प्राक्कथन

जिस परमपिता परमात्मा ने हमारा निर्माण किया हैं, जिस परमपिता परमात्मा ने नाना प्रकार की सृष्टि का सृजन किया हैं, जिस परमपिता परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की हैं और रचना करके उनको जो क्रिया दे रहा हैं, उस परमपिता परमात्मा का कृतज्ञता के वषीभूत हमें चिन्तन करना चाहिए, ब्रह्मयाग करना चाहिए।

हमे इन्द्रियों का साकल्य बना करके, हृदय रूपी यज्ञशाला में साधना के द्वारा ब्रह्म का दर्शन करना है। ब्रह्म की प्रतिभा में निहित हो जाना है, और ऐसा करना ही ब्रह्मयाग कहलाता हैं।

प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है जैसे, रूप, रस, गन्ध इत्यादि इन विषयों में सर्वत्र मानव की आभा निहित रहती है और यही ब्रह्मयागी बनने के लिए साकल्य कहलाता है। जैसे नेत्र हैं, जैसे घ्राण इन्द्रियां हैं यह एक-एक विषयों में ब्रह्म की गाथा गा रही हैं। सूर्य और चन्द्र हैं यह भी ब्रह्म की गाथा गा रहे हैं। ब्रह्म की गाथा गाते हुए, विषयों को जानना, महान प्रतिभाओं को जानना, प्रत्येक इन्द्रियों को ब्रह्म में, आत्मतत्व में समर्पित करके, ब्रह्म की आभा में ले जाना ही ब्रह्मयाग कहलाता है।

तो हमें ब्रह्मयाग करना है। क्योकि ब्रह्म का चिन्तन करने वाले स्वर्ग में जाते हैं। वह इस ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जानते रहते हैं। ब्रह्म के चिन्तन के साथ ही हमारा आत्म-चिन्तन भी प्रारम्भ होता है। आत्म-चिन्तन और ब्रह्म चिन्तन दोनों को एक ही सूत्र में पिरोने से ब्रह्मयाग बन जाता है। प्रातः काल प्रभु की सृष्टि को निहारना है। वह प्रभु को एक-एक, कण-कण में दृष्टिपात करना है और ऐसा करते-करते उसी में रत्त हो जाना ब्रह्मयाग कहलाता है और अगर मानव ऐसा नहीं करता है तो अज्ञानता के कारण इस प्रभु की सृष्टि में, अपने में दूषित परमाणुओं का प्रसारण करता रहता है। जिससे प्रभु की सृष्टि में दूषितपना आ जाता है। वातावरण में विकृतता आ जाती है।

प्रभु ने इस मानव शरीर का निर्माण किया है। हमें प्रातःकाल, सायंकाल प्रभु के सम्मुख विद्यमान होना चाहिए। प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु! मैं आपका अमृतमयी पुत्र हूँ। प्रभु! मुझे इस संसार को विचारने के लिए, मेरे हृदय में सदबुद्धि भरण कर। मेरे में अनुपम बुद्धि आ जाए। प्रभु! तू अपनी कृपा, आनन्द को बरसा। हमें आनन्द की वृष्टि करा करके तृप्त कर्मों से पार करा। हे प्रभु! हम अन्धकार में नहीं रहना चाहते। हम प्रकाश में रत्त रहना चाहते हैं। प्रत्येक मानव प्रकाश को चाहता है।

जैसे माता का पुत्र, माता की अनुपम सेवा करता हुआ आज्ञा का पालन करता है तो वह माता आलिंगन करती हुई, उससे स्नेह करती है। और अपने कर्त्तव्य का पालन करती चली जाती है। इसी प्रकार हमें भी प्रभु की आज्ञा का पालन करना है। उसका जो विधान है, उसका जो निर्माण किया हुआ अमूल्य जगत् है उसी के ऊपर हमें बारम्बार विचार-विनिमय करना चाहिए। पूज्यपाद गुरुदेव के प्रवचनों में ब्रह्मयाग के स्वरूप और उसकी अनिवार्यता का ऋषि मुनियों के विमर्श से उसकी महिमा का बोध होता है।

ब्रह्मयाग की उसी महिमा को प्रवचनों में से संकलित करके ब्रह्मयाग मीमांसा पुस्तक में प्रस्तुत किया है। आशा है यह प्रस्तुक हम सभी को ब्रह्मभाव में जीने के लिए विवश करेगी। -डॉ. कृष्णावतार

ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार
एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

परमपिता परमात्मा की विचित्रता से युक्त, अद्भुत और विलक्षण सृष्टि का उद्घाटन पूज्यपाद गुरुदेव श्रृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों से हुआ। वह ईश्वर का एक अलौकिक और दिव्य प्रकटीकरण है और सृष्टि के इतिहास की एक मात्र, विलक्षण अद्भुत घटना भी। जब १४ सितम्बर सन् १९४२ को, उत्तर प्रदेष के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर, सलेमाबाद में एक विषेष बालक ने जन्म लिया। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो बालक की गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, लगभग १५ मिनट वेद मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त सृष्टि के आदि काल से

वर्तमान काल तक के विभिन्न कालों के स्वयं और विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक एक दिव्य प्रवचन होता। बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ में आवाज अस्पष्ट होती और जैसे-जैसे आयु बढ़ने लगी, वैसे-वैसे ही आवाज और विषय दोनों स्पष्ट होने लगे।

पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नही था। ग्रामीण, निर्धन और अपठित समाज होने के कारण भूत-प्रेत का प्रभाव मानते हुए बहुत-सी चिकित्सा भी कराई गई, पर सब व्यर्थ रहे। क्योंकि बालक की यह प्रवचन क्रिया तो यौगिक थी यह तो सतत् ऐसे ही चलती रही।

आवाज जब कुछ स्पष्ट हुई तो इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। और इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में भी जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में जाता तो कुछ अन्तराल बाद स्वतः ही योग समाधि की स्थिति बन जाती। जहां इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और जैसा काल देखा था उस काल के अनुकूल व्याख्यान कण्ठ आ जाते। क्योंकि, जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार स्मृति में, अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं। और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीर धारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती, जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमष मुनि महाराज, और पूज्य महानन्द जी के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण, वहां अन्तरिक्ष में दिव्य आत्माओं के सम्मुख सत्संग में दिया जाने वाला दिव्य प्रवचन, इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन मानस को भी सुनाई देते। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, ब्रह्माण्ड की विशालता, प्रत्येक लोक में जीवन की अनिवार्यता का बोध, सृष्टि का उद्देश्य, पूर्व कालों में विज्ञान की विशालता का दिग्दर्षन, वैदिक संस्कृति का उज्ज्वलतम स्वरूप, आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का स्वरूप, विभिन्न कालों का आँखो देखा सदृश्य वर्णन, भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का साक्षात दर्शन, समाज में प्रचलित रूढ़ियों का निवारण करने वाली दृष्टि, क्या कुछ दिव्य नहीं है इन दिव्य प्रवचनों में ? ये किसी भी मनुष्य को, समाज का और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते है।

पूज्यपाद गुरुदेव की २० वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्यचकित और उनका

मार्गदर्शन करते रहे। परन्तु कुछ प्रबुद्ध महानुभावों ने इन प्रवचनों की इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से सन् १९६२ से (टेप रिकार्ड) संरक्षित करने का निश्चय किया, और यह क्रम पूज्यपाद गुरुदेव के महाप्रयाण १५ अक्टूबर सन् १९९२ तक होता रहा।

इस अन्तराल पूज्यपाद गुरुदेव के १५०० प्रवचन, टेप रिकार्ड से संरक्षित किये गये। जिनमें सृष्टि के अनन्तकाल की अमूल्य धरोहर निहित है। हम उनको व्यवस्थित रूप से और अनुसंनधानात्मक दृष्टि से पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। परमात्मा की अनुपम कृपा से प्राप्त, इस अमूल्य धरोहर को जन-जन तक पंहुचाने के प्रयास में योगदान देने के लिए, प्रत्येक वैदिक धर्मी को सहयोगी बनना चाहिए। जिससे हम सृष्टि के आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की मानव गाथा को सभी के सम्मुख रख सकें। विश्व कल्याणार्थ की भावना से निहित इस महान् ज्ञान की वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति को प्रसारित कर सकें। शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

आभार व धन्यवाद

मनुष्य ज्ञान की खोज में जब अपने पग बढ़ाता है तो उसकी जिज्ञासा की शुद्धता व पवित्रता उसको निश्चित ही शुद्धतम ज्ञान से अवगत करा देती है। और मनुष्य जब शुद्धतम ज्ञान से संलिप्त हो जाता है तो बाह्य वातावरण में कितनी भी रूढ़ियां उसके सामने आए, परन्तु शुद्धतम ज्ञान सदा उसका मार्ग प्रशस्त करता रहता है। और वह कदापि कलूषित भाव से ग्रसित नहीं होता।

परमपिता परमात्मा ने ज्ञान की अमूल्य धरोहर वेद के रूप में प्रदान की। उसी वेद की महिमा को अपने प्रवचनों में अभिव्यक्त करने वाले जन्म-जन्मान्तरों की ऋषि आत्मा पूज्यपाद गुरुदेव शृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों का अमृतमयी ज्ञान भी जिज्ञासु मानव को ज्ञानामृत से तृप्त करता रहता है।

परन्तु यह ज्ञान जन जन तक व्यवस्थित रूप से पहुँचे इसी प्रयास में हम संलग्न हैं।

पूज्यपाद गुरुदेव के साहित्य पर कार्य करते हुए जिस व्यक्ति को सदैव अपने पास अनुभूत किया वे है श्री सुकेश त्यागी जी।

गुरुदेव के प्रवचनों को प्रकाशित और प्रचारित करने के उद्देश्य से आधुनिक संचार प्रणाली से संचालित कराने वाले श्री सुकेश त्यागी जी ही है बैबसाइड आदि के संचालन और प्रकाशन के कार्या में आर्थिक सहयोग प्रदान करने वाले श्री सुकेश त्यागी जी की सुपुत्री कु. कृतिका त्यागी ने जब बी. टैक. पढ़ाई के बाद नौकरी की, तो उसने यह संकल्प ले लिया था कि मै अपने मासिक वेतन का कुछ हिस्सा गुरुदेव के प्रवचनों के प्रकाशन में दूंगी।

अभी इस बच्ची है यह सोचकर हम लेने से मना करते रहे पर उसका संकल्प और दृढ़ होता गया इसके आग्रह को देखकर मन में बार-बार यह प्रश्न भी उठता था कि इसके शुभ संकल्प को रोकने वाले हम कौन होते है यह सोचकर हमने उसके संकल्प को नमन किया।

क्योंकि हमारा प्रवचनो के विषय को विषय विशेष पर संकलित करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करने का प्रयास है। जिससे पाठक विभिन्न प्रवचनों के एक ही विषय को एक ही पुस्तक में पढ़ सकें। उसी क्रम में ब्रह्मयाग मीमांसा पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। पुस्तक के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग

कु कृतिका त्यागी के द्वारा अपने दाना स्व. श्री विष्णु दत्त त्यागी की स्मृति में दिया जा रहा है। शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान आर्थिक सहयोग के लिए कृतिका त्यागी जी का हृदय से आभार व धन्यवाद व आशीष प्रदान करता है। **शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान**

१ प्रभु से सन्धि

जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है, तो उससे पूर्व आत्मा, उस प्रभु से अनुरोध करता है कि प्रभु कर्म करने के लिए सृष्टि उत्पन्न करो। सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात, एक समय ब्रह्मा देवताओं के द्वार पर पहुंचे। ब्रह्मा के चरणों को स्पर्श करते हुए देवताओं ने कहा कि भगवन! हमारे कल्याण के लिए कोई मार्ग निर्णय कीजिए। उस समय ब्रह्मा जी बोले, अरे देवताओं! आज तुम कौन से वाक्य से देवता बने हो, इसका मुझे कुछ प्रकाश दो? उस समय देवताओं ने कहा, हे भगवन! हम किसी का आदर करके और अनुकरण करके देवता बने हैं। तब ब्रह्मा ने कहा, तुम किसका आदर करते हो? उन्होंने कहा कि हम तो संध्या का आदर करते हैं, हम दुर्गा का आदर करते हैं। उस समय ब्रह्मा जी बोले, अरे देवताओं! तुम कल्याण का ओर क्या मार्ग चाहते हो? उस समय देवताओं ने कहा प्रभु हमें आपके मुखारविन्द की भी तो आवश्यकता है। जो आप अपने मुखारविन्द से कहेंगे वह हमारे लिए अमृत बन जाएगा।

उस समय ब्रह्मा जी ने अपने मुख से इस संध्या को उत्पन्न किया और कहा कि हे देवताओं! यह जो सन्ध्या मैंने तुम्हारे लिए उत्पन्न की है इसका अनुकरण करो। यह सन्ध्या तुम्हें ओर भी देवता बना देगी। आज तुम दूसरों का आदर करके देवता बने हो, परन्तु इस सन्ध्या को, जो मेरे मुखारविन्द से उत्पन्न हुई है इसका अनुकरण करो।

तो सन्ध्या ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई, जिसके अनुकरण से ऋषि बन जाते हैं जिससे देवता बन जाते हैं, मेरी माताएं दुर्गा बन जाती हैं, माँ काली बन जाती हैं जिससे अपने जीवन को ऊँचा बना लेते हैं आज हमें सन्ध्या की गोद में जाना है।

देवता हर समय दूसरों के कल्याण के लिए ही विचार करते हैं वह हर समय दूसरों को कुछ देते ही रहते हैं वे अपनी त्रुटियों को देखकर दूसरों के गुणों को धारण करते रहते हैं। संसार में दूसरों के कल्याण की भावना जिनके हृदय में रहती है, वे देवता कहलाते हैं, वे दूसरों की निन्दा नहीं करते। जो दूसरों की निन्दा करते हैं उन्हें देवता नहीं कहते। आत्मा की व्याहृतियों को जानने वाले को देवता कहते हैं।

ब्रह्मा ने अपने मुखारविन्द से सन्ध्या को उत्पन्न किया, सन्ध्या प्रकाश देती आई है और संसार को ओर भी प्रकाशमान बना दिया। आज सूक्ष्म सा प्रकाश हो रहा है और यदि सूर्य का प्रकाश आ जाए तो यह प्रकाश शांत हो जाता है। यह प्रकाश फीका पड़ जाता है। इसी प्रकार विधाता ने यह सूक्ष्म-सा प्रकाश संसार को दिया, परन्तु एक सूर्य जैसा प्रकाश सन्ध्या का आया। सन्ध्या के आते ही सबने उसको अपने में धारण करना प्रारम्भ कर दिया। उसका अनुसरण किया। तो वहाँ ओर भी प्रकाश हो गया। संसार में आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप, आवरण थे वे भी सब शांत होने लगे। वह इस प्रकार शांत हो गए जैसे सूर्य उदय होने पर रात्रि की प्रभा शान्त हो जाती है।

इसी प्रकार सन्ध्या के अनुकरण से मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है जिस मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ बन गया, उसका वास्तव में कल्याण हो गया। तो हमें अपना कल्याण करना है और विचारना है कि कल्याण के लिए सबसे मुख्य वार्त्ता क्या है?

हे परमात्मन! तू कल्याण करने वाला है। हे सन्ध्या! तू कल्याण करने वाली है। आज हमें सन्ध्या का पूजन करना है। सन्ध्या के गुणों को अपने में धारण करना है। हमें माता दुर्गे की याचना करनी है। हे माता! तू अष्ट भुजों वाली और कल्याण करने वाली है। तू आ और हमारा कल्याण कर।

जो प्रातःकाल में सन्ध्या का अनुकरण करते हैं और एकान्त स्थान में विराजमान हो करके सन्ध्या का पान

करते हैं और सन्ध्या में कहते हैं प्रातरग्नि हे विधाता! हमारी रक्षा करो। आज हम अपनी रक्षा चाहते हैं यह जीवन आपका है। यह शरीर आपका है। मनुष्य सब ही कुछ परमात्मा के अर्पण कर देता है। उस समय मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ हो जाता है आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप आवरण पाप कर्मों द्वारा, दुष्ट कर्मों द्वारा आ जाते हैं वे उस प्रकाश से सब शान्त हो जाते हैं जैसे एक वस्त्र हैं और उसमें बड़े ही दोष हैं परन्तु जब वह जल के समीप जाता है तो जल उसे निर्मल और स्वच्छ बना देता है। इसी प्रकार हमें भी अपनी आत्मा के द्वारा जो मल विक्षेप आवरण हैं उनके शान्त करने के लिए हमें सबसे पूर्व माता सन्ध्या का पूजन करना है। उसके पाठ को करना है। जिससे हमारा वास्तविक कल्याण हो जाएगा।

आज सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमें इन वेद मन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया। आज इस अमृतबेला में उस गान को गाएं, जिससे हम देवता बन जाएं देवता जन प्रातःकाल में कैसे अमृत को पान किया करते हैं हे प्रातःकाल की अग्नि! तू हवि है। तू हव्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है। तू हमें हव्य पदार्थों को पान करा, जिससे हम देवता बन जाएं और देवता-गणों के समाज में विराजमान होकर देव वाणियों को विचारें, जिससे हमारी विचारधाराएं हर स्थान में देववृत्ति ही बनी रहे। २० १० १९६३

आज इस प्रातःकाल में प्रभु का गुणगान गाएं हे परमात्मन्! तू कल्याण करने वाला है। तुने हमारे कल्याण के लिए नाना सामग्री उत्पन्न की है। हे प्रभु! हम आपसे कल्याण चाहते हैं। इस संसार को नियम से बनाने वाले, हे इन्द्र! हमारे जीवन को भी नियमित बना। जब हमारा जीवन नियमित होगा, तो हम सब कुछ कार्य कर सकेंगे। आपने प्रातःकाल में सूर्य को उत्पन्न किया है, इसी प्रकार हे देव! हम उस महान ज्योति को चाहते हैं जिससे हमारा आत्मिक कल्याण हो। वह महान ज्योति हमारी सन्ध्या की व्याहृतियां हैं जब सन्ध्या की व्याहृतियों को जाना जाता है तो वह सन्ध्या वास्तव में हमारा कल्याण करा देती है। जब देवता सन्ध्या के द्वार पर जाते हैं तो सन्ध्या पुकार कर कहती है कि हे देवताओं! यदि मेरा आदर करोगे, अनुकरण करोगे तो तुम संसार में देवता बन जाओगे यदि तुम मुझे ठुकराओगे तो तुम संसार में ठुकराए जाओगे।

आज सबसे पूर्व अपने को बनाना है। जब मनुष्य शन्नो देवी का पाठ करता है तो कहता है हे देवी! तू कल्याण करने वाली है। तू हमारे कंठ में आ समा। जैसे जल हमारी तृषा को शान्त कर देता है उसी तरह हमारा कंठ उस जल रूपी तृषा का इच्छुक न रहे। हे शन्नो देवी! हम तो उस आनन्द के इच्छुक है। जैसे जल शीतल बना देता है उसी प्रकार हे शन्नो देवी! तू आ और हमारे कंठ में विराजमान हो। हे माता! हमारा कंठ मधुर बने, सुन्दर बने। जिससे हे माता! हमारे कंठ में जो वार्त्ता होगी, यथार्थ होगी। और वह अन्तकरण तक जाएगी। हमारे द्वारा जो मल, विक्षेप आवरण हैं हे शन्नो देवी! वे मेरे शांत हो जाएंगे। जैसे जल से तृषा शान्त हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान से हमारे मल, विक्षेप आवरण शान्त हो जाएंगे। जब ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा तो अन्धकार कहाँ रहेगा। जैसे रात्रि को शान्त करने वाला सूर्य प्रातःकाल में आता है और रात्रि का नाश कर देता है इसी प्रकार हे शन्नो देवी! तू वाणी में विराजमान हो जाएगी और वाणी का प्रभाव अन्तःकरण तक जाने के पश्चात मल विक्षेप आवरण जो हमारे पापों से बन चुके हैं वह सब शान्त हो जाएंगे। हे माता! हम तुझसे अनुरोध करते चले जा रहे हैं संध्या में सबसे पूर्व हमें अपने को बनाना है।

सन्ध्या की तीन व्याहृतियां होती हैं, एक अपने को बनाना है कि मैं कौन हूँ और मैं कैसा बनूं? मेरा हृदय कैसा बने, आज मेरा कंठ कैसा बने? मेरे चक्षुः, मेरे श्रोत्र, मेरी घ्राण कैसी बने? मेरी त्वचा यह सब ही कुछ कैसे बने। अपने को परमात्मा के समर्पण कर दो। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को जानो। पहली व्याहृति यह है।

द्वितीय व्याहृति वह है कि हम परमात्मा की सृष्टि का प्रकरण लेते हैं हम परमात्मा का गुणगान गाते हैं, हे

परमात्मा! अब हम आपके पात्र हुए हैं मैंने आज से पूर्व काल में कहा है कि परमात्मा के गुणगान गाने के लिए तुम पात्र बनो। जैसे यज्ञोपवीत लेने से पूर्व पात्र बनो। उसके पश्चात तुम किसी की याचना कर सकोगे। आज जैसे किसी द्रव्यपति के द्वारा कोई सेवक है। और किसी काल में अपने स्वामी से कहता है कि मेरा जो वेतन है, वह मुझे दो। तो वह वेतन किस काल में प्राप्त करता है? वह उसी काल में प्राप्त करता है जब वह पात्र बनता है। इसी प्रकार हमें सबसे पूर्व अपने को बनाना है और अपने को जानना है। जब हम अपने को जान जाएंगे, तो उसके पश्चात हम परमात्मा के गुण गाने योग्य होंगे, प्रभु का गुणगान गाएंगे तो एक समय वह आएगा कि प्रभु हमारा रक्षक बन जाएगा। जब प्रभु हमारा रक्षक बन जाता है तो उस काल में वह हिंसक प्राणियों से, जो हमें कष्ट देने वाले हैं उनसे हमारी रक्षा करता है। तो आज सबसे पूर्व हमें पात्र बनना है और सब कुछ परमात्मा के अर्पण कर देना है।

मानव संध्या काल में विराजमान होता है सबसे प्रथम वह अपनी इन्द्रियों को स्पर्श करता हुआ अपनी इन्द्रियों के विषयों को जानता हुआ और परमात्मा से अपना तन्मय करता हुआ वह कहता है हे प्रभु! मेरी इन्द्रियाँ स्वस्थ हो, मेरी इन्द्रियाँ पवित्र हो, प्रभु! जिससे मैं आपके द्वार पर आ जाऊं, आपकी प्रतिभा को विचारने लगूं तो सबसे प्रथम मानव ब्रह्मयाग में परिणत हो जाता है।

संध्या में सबसे पूर्व शन्नो देवी आता है! हे शन्नो! तू देवी है, तू हमारे कंठ में विराजमान हो। वह शन्नो हमारे कण्ठ में विराजमान हो जाती है। इसके पश्चात आता है चक्षुः चक्षुः। प्रत्येक इन्द्रिय के लिए प्रभु से याचना करते हैं कि हे प्रभु! तू हमारे चक्षुओं को पवित्र बना और कैसा बना कि हमारे द्वारा पाप दृष्टि न हो। यदि हमारे चक्षुओं में पापाचार की दृष्टि आ गई। तो वास्तव में हम पापी बन जाएंगे और एक समय वह आएगा कि वह पाप दृष्टि हमारा मूल बन करके हमारा विनाश कर देगी।

तो हे विधाता! हमारे जो श्रोत्र हैं यह आपकी वार्त्ता को स्वीकार करते रहें, दूसरों की निन्दा को स्वीकार न करें, ये आज गुणों को धारण करने वाले बनें, दूसरों की वार्त्ताओं को श्रवण करें। इसी प्रकार हमारे जो हस्त हैं यह आपके अर्पण हैं, हे विधाता! इन्हें पवित्र करो। भुजा हमारे पवित्र हों यशोबलम् पवित्र हो। यह कैसे पवित्र बनेंगे? जब प्रभु का गुणगान गाएंगे और इन सबको प्रभु के अर्पण कर देंगे। हम श्रद्धालु बन करके, उस प्रभु का अनुकरण करते हैं तो विधाता से कहा करते हैं कि हे विधाता! यशोबलम् हम किसी प्रकार भी किसी निरपराधी को दण्ड न दें यदि निरपराधी को दण्ड देंगे, तो विधाता! हमारा विनाश हो जाएगा। द्वितीय आकर हमारे पर आक्रमण करेगा। आज हम यह चाहते हैं कि हमारे भुजा पवित्र कार्य करें आज हम निरपराधी की रक्षा करेंगे तो वास्तव में कल्याण होगा। हे देव! कल्याण के करने हारे! तू आ, और हे भगवन! हम तेरे अर्पण हैं।

इसके पश्चात् आगे चलकर यह पद अशुद्ध मार्ग पर न चलें यह उस मार्ग में चलें जहाँ ऋषि, महर्षियों का सत्संग हो रहा हो। यह उस मार्ग को चलें जहाँ प्रभु! आपका गुणगान गाया जा रहा हो। जहाँ दुराचारियों का गुणगान गाया जा रहा हो, उस मार्ग को न चलें, वह मार्ग मानव के कल्याण के लिए नहीं सन्ध्या की व्याहृतियां क्या कह रही हैं कि हमारे अंग पवित्र हों हृदय उदार हो, पवित्र हो।

इसी प्रकार आगे चलकर मार्जन किया करते हैं प्राणायाम क्रिया करके प्राणायाम में कहते हैं भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। हे विधाता! हम प्राणायाम करें, समाधि में लय हो जाएं, जिससे हम इन भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तपः लोक लोकान्तरों में पहुंच सकते हैं। विधाता हमारे द्वारा ओर कोई साधन नहीं, जिससे हम इन लोक लोकान्तरों को जान सकेंगे, हम आपकी महिमा को देख सकें, इसीलिए सबसे पूर्व अपने को बनाना।

उसके पश्चात् आता है ऋतं´्च सत्यं´्च हे विधाता! तू वास्तव में ऋत है। तू वास्तव में सत्य है, पवित्र है।

हे विधाता! अब हम तेरे आँगन में आने योग्य हो गए हैं अब हम पवित्र बन गये हैं हमने सब ही कुछ आपके अर्पण कर दिया है। उस समय प्रभु का गुणगान गाते हैं।

हमारे यहाँ यौगिक साहित्य में, जब योग के ऊपर अनुसन्धान करने लगता है। योग की आठ प्रवृत्तियां मानव की जागरूक हो जाती हैं। आठों भुजाओं से वे कल्याण करने वाली, अष्ट-भुजा, अष्ट दिशाएं कहलाती हैं।

सबसे प्रथम प्राची दिक्, दक्षिणी दिक्, प्रतीची दिक्, उदीची दिक् ध्रुवा, दिक ऊर्ध्वा दिक् ईशान कोणों और दक्षिणाय कृति कहलाती है ये अष्ट भुजाएं कहलाती हैं। यह जो प्रकृति का सर्वत्र ब्रह्माण्ड, प्रकृति की जो रचना हो रही है वह सबसे प्रथम पूर्व दिशा से प्रकाश आता है। वह प्रातःकाल में अदिति, सूर्य उदय होता है इसीलिए उस मां का सबसे प्रथम भुज हमारे यहाँ पूर्व दिशा में आता है जिसमें अदिति उत्पन्न होते हैं।

वह प्रकाश का भण्डार है। प्रातः काल होते ही प्रत्येक मानव पूर्व मुख हो करके वह याग करता है। क्योंकि पूर्वाभिमुख होकर के याग इसीलिए, क्योंकि वह प्रकाश का भण्डार हैं वह मां इस प्रकृति का एक भुज कहलाता है। उसके एक भुज में प्रकाश है।

वह प्रकाश कैसा है? पूर्व दिशा से ही सूर्य उदय होता है। वह ऊषा और कान्ति के सहित आता है। प्रातःकालीन जब सूर्य उदय होती है, तो ऊषा और कान्ति प्रसाद रूप में मानव को प्राप्त होती है। हे मानव! तू उस प्रसाद को प्राप्त करने वाला बन। जब ऊषाकाल होता है उस ऊषाकाल में, अन्तरिक्ष में लालिमा होती है, वह लालिमा मानव के नेत्र का प्रकाश बन करके मानव को अमृत बिखेरती रहती है। प्रत्येक मानव अमृत को पान करता रहता है।

हमारे ऋषि मुनियों ने कहा कि जो साधना करने वाले पुरुष हैं, जो गृह में रहने वाले पुरुष हैं, वे सदैव जागरूक हो जाएं और वे पूर्वाभिमुख हो करके, अपना ध्यान अथवा साधना करने में सदैव रत्त रहें। क्योंकि वह प्रकाश का भण्डार है। क्योंकि प्रकाश ही तो मानव का जीवन है। प्रकाश के आने पर कांति बन करके आती है, अन्धकार समाप्त हो जाता है। क्योंकि अन्धकार अज्ञान का प्रतीक है और प्रकाश ज्ञान का प्रतीक माना गया है।

सबसे प्रथम ये पूर्व कहलाता है। यह देवी कि एक भुजा कहलाती है, मां काली की एक भुजा कहलाती है।

द्वितीय भुज दक्षिण दिक् कहलाता है। दक्षिण दिक् किसे कहते हैं? वे पूर्व से दक्षिण को ही विद्युत की तरंगें चलती हैं। दक्षिणदिक् उसमें शब्द विद्यमान होता है। एक मानव शब्द का उच्चारण करता है। उच्चारण करके जो शब्दों का भण्डार है, वह उसका दक्षिण दिक् कहलाता है। क्योंकि वह द्वितीय चरण अथवा द्वितीय भुज कहलाता है।

दक्षिण में विद्युत का भण्डार रहता है। हमारे आचार्यों ने एक वाक्य कहा है कि मानव को दक्षिण दिशा की ओर पगों को करके कदापि विश्राम में तल्लीन नहीं रहना चाहिए। क्योंकि इससे दक्षिण दिशा को प्राप्त विद्युत और मानव की विद्युत दोनों का समन्वय हो जाता है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि दक्षिण दिशा की ओर पगों को करके विश्राम नहीं करना चाहिए। ऐसा करके विश्राम में तल्लीन नहीं रहना चाहिए। ऐसा हमारे वैदिक साहित्याचार्यों ने एक शिक्षा-प्रद वार्त्ता प्रगट की है।

यदि और भी भी ऊर्ध्वा में जाओगे तो दक्षिण में शब्दों का भंडार है। जो भी शब्द जाता है, वह दक्षिण में जाता है क्योंकि श्रोत्रों का जो देवता है, वह दक्षिण दिशा कहलाती है। इसीलिए जो भी शब्द आता है, उस शब्द को जान करके, जो भी उच्चारण करता है, वह एक गति करता है, और उत्तर से पूर्व हो करके वह दक्षिण को प्राप्त हो करके मानव के श्रोत्रों में प्रवेश करता है। तो इसीलिए यह जो दक्षिण दिशा है, यह अग्नि, यह विद्युत का भण्डार है। यहां नाना प्रकार की विद्युत आती है। और विद्युत आ करके वन इत्यादियों की वृद्धि कर देती है।

हमारे यहाँ आचार्य प्रतीची दिक् कहते हैं, पश्चिम दिशा को। यह जो पश्चिम दिशा है यह मां की तृतीय भुज कहलाता है। साधना करने वाला कहता है, हे प्रतीची दिक्! हे अन्न के भण्डार! तू मानव की वृद्धि करने वाला कहलाता है, क्योंकि पश्चिम दिशा में अन्न का भण्डार होता है। प्रभु का दिया हुआ अन्न का भण्डार होता है। जब पश्चिम दिशा से वायु वेग से गति करती है, विद्युत को साथ में ले करके, तो मां पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार की आभा को परिणत कर देती है। और नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ इसी से उत्पन्न होने लगता है।

तो यह अन्न का भण्डार है, अन्नादि कहलाता है। तो वह प्रतीची दिक् कहलाता है। प्रतीची दिक् वह मां का तृतीय भुज कहलाता है। प्रकृति मां काली का भुज कहलाती है। इससे वह अन्नादि प्रगट करती है, अन्नादि को प्रसाद रूप में देती है। नाना प्रकार के खनिज को वो प्रसाद-रूप में परिणत करती है। तो वह, प्रतीची दिक् कहलाता है। प्रतीची दिक् की आभा में रमण करने वाला है। वह एक आभा में गति करने वाली एक विचित्रता है। जो वह तृतीय भुज कहलाती है।

चतुर्थ जो भुज है वह उदीची दिक् कहलाती है। उदीची का अभिप्राय क्या है? उदीची कहते हैं उत्तरायण को। तो जितने साधकजन हैं वे उत्तरायण को पूर्वाभिमुख करके साधना करते हैं, योगाभ्यास करते हैं, प्राण की गति को लेते हैं। क्योंकि जितना भी ज्ञान का भण्डार है, वह उत्तरायण में रहता है। हमारे यहाँ उत्तरायण और दक्षिणायन दो प्रकार की दिशा कहलाती है।

दो प्रकार का ज्ञान होता है एक उत्तरायण होता है, एक दक्षिणायन होता है। एक माह में दो पक्ष होते हैं एक उत्तरायण होता है, एक दक्षिणायन होता है। एक शुक्ल होता है, तो एक कृष्ण होता है। कृष्ण अंधकार को कहते हैं और शुक्ल प्रकाश को कहते हैं। तो उत्तरायण, यह माता का चतुर्थ भुज कहलाता है।

धुरवा दिग् विष्णुरधिपतिः ध्रुवा में रमण करना। ध्रुवा कहते हैं, नीचे आभा कृतियों में, जहाँ मानव आसन पर विद्यमान होता है। साधक कहता है, हे प्रभु! हे ध्रुवा दिग् विष्णु! हे विष्णु! मेरे निचले स्थान में, भी तू ही विद्यमान है। तू कैसा पवित्र देवता है? वह कहता है ध्रुवा दिग् विष्णुः अधिपतिः दिग् विष्णु कह रहा है। वह दिग् विष्णुः की याचना कर रहा है। मैं जब चारों भुजाओं को जान लेता हूँ तो उस समय इस प्रकृति में दिग्विष्णु, दिग्विजय बन जाता हूँ। विष्णु के स्वरूप को जानने में कुछ-कुछ सफलता को प्राप्त करने लगता हैं। यह साधक याचना करता है।

साधक यह विवेचना कर रहा है। तो वह कौन-सा साधक है? जो दिग् विष्णु है? जो ध्रुवा में गति करने वाला है। जो प्रकृति की भी यह ध्रुवा गति में वह ज्ञानी गति करता है। वैज्ञानिक इसमें रमण करने लगता है। साधक ध्रुवा में प्रभु को दृष्टिपात करता है और उसे ध्रुवा में भी ऊर्ध्वा में भी, प्राची में भी, दक्षिणी में भी, प्रतीची में भी, उदीची में भी। मां ही मां दृष्टिपात होने लगती है।

हे ममतामयी मां! तू कैसी भोली है? तू कैसी महान् है? तू अन्धकार को समाप्त करके, तू प्रकाश में लाने वाली है। तू प्रत्येक मानव को प्रकाश में ला रही है और वह प्रकाश ही मानव को प्रतिष्ठित बनाता है। तेरा ममतामयी जो महत्व है वह मानव के हृदय में ओत-प्रोत हो जाता है।

तो दिग् विष्णुरधिः पतिः वह दिग्विष्णुः है। विष्णु की हम याचना करते हैं। तो दिग्विष्णु माता के एक भुज में रहता है। वह ध्रुवा में भी रहने वाली है। तो इसीलिए यह मां का पांचवां भुज कहलाता है और छठा जो भुज है वह उर्ध्वा में रहता है।

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिः हे बृहस्पति लोकों में रमण करने वाले प्राणियो! मां बृहस्पति लोकों में गति करने वाली है। वह कैसी ऊर्ध्वा में रहने वाली मां है? ऊर्ध्वा में भी साधक मां को दृष्टिपात कर रहा है। मां की ऊर्ध्वा में आभा को साधक दृष्टिपात कर रहा है।

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिः वह बृहस्पति हैं नाना लोक लोकान्तरों में वैज्ञानिकों के लिए बृहस्पति मण्डल है, दार्शनिकों के लिए बृहस्पति अन्तरिक्ष है और जो देव-प्रवृत्ति वाले हैं, बृहस्पति उनके लिए गुरु बन करके, उनके ऊपर साया (छाया) करके प्रकाश दे रहा है, ज्ञान की आभा प्रकट कर रहा है।

वे बृहस्पति हैं। वह ऊर्ध्वा में श्वित्रो शिव बन करके मानव का कल्याण करने वाला है। नाना प्रकार के सुखां की, आनन्द की वृष्टि कर रहा है। कैसी वृष्टि कर रहा है? शिव महा आनन्द की वृष्टि करके मानव को प्रकाश दे रहा है। देवत्व को प्राप्त कर रहा है। दैवी सम्पदा वाले, देववत् को प्राप्त होते जा रहे हैं।

यह इस मां का छठा भुज कहलाता है। जिसमें ऊर्ध्वा में बृहस्पति गति कर रहा है। ऊर्ध्वा में जब तुम जाओगे, तो नाना प्रकार के मण्डलां में चले जाओगे। तो द्यौ लोकों में रमण करने लगोगे। आगे चले जाओगे, तो तुम्हें ऐसे-ऐसे लोक प्राप्त होंगे, चार अरब बत्तीस करोड़ का यह जो कल्प चला जाता है, सृष्टि का दिवस चला जाता है, इतने समय में भी इन मण्डलों का प्रकाश पृथ्वी-मण्डल पृथ्वी तल पर नहीं आ पाता।

वह कैसा है? वह कैसी आभावाला है? इतने समय में तीन-तीन कल्प समाप्त हो जाते हैं। ब्रह्मरात्रि, ब्रह्म-दिवस समाप्त हो जाते हैं परन्तु बहुत से तारा मण्डलों का प्रकाश इस पृथ्वी को स्पर्श भी नहीं कर पाता।

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पति ऊर्ध्वा में गति करने वाला उपस्थान को प्राप्त होता है। ऊर्ध्वा में कौन जा रहा है? साधक जा रहा है। ऊर्ध्वा में कौन जा रहा है? जो ब्रह्मवेत्ता बनने जा रहा है, जो ब्रह्म का चिन्तन करने वाला है। साधक योगीजन अपनी उड़ान उड़ रहा है। ऊर्ध्वा में कौन जाता है? साधक जाता है प्रकृति की गोद में वैज्ञानिक चला जाता है, विज्ञान के युग में गति करने लगता है। वैज्ञानिक यंत्रों पर विद्यमान हो करके लोक-लोकान्तरों की यात्रा करने लगता है।

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिः ऊर्ध्वा में मानव को जाना चाहिए, ऊर्ध्वा में रमण करना चाहिए। यह जो यज्ञशाला में ईशान कोण कहलाता है, इसमें जहाँ कलश की स्थापना होती है; यज्ञशाला का जब आकार बनता है। त्रिभुजों वाला वहाँ ईशान कोण में कलश और ज्योति का प्रकाश होता है।

ईशान में गति करने वाला जब योगाभ्यास करने वाला प्राणी, मूलाधार में मूलबन्ध को लगा देता है। मूलबन्ध को लगा करके उसके पश्चात् वह नाभि केन्द्र में वह ज्योति का प्रकाश दृष्टिपात करता है। उसके पश्चात् वह जालन्धर बन्ध को लगा करके हृदय-चक्र में अपने में ज्योति को दृष्टिपात करता है। उसके पश्चात् वह कण्ठ में और स्वाधिष्ठान चक्रों में और जहाँ त्रिवेणी का स्थान, जहाँ इडा, पिंगला, सुषुम्णा इनका मिलान होता है वहाँ त्रिभुज कहलाता है तीनों गुणों, तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण, को दृष्टि-पात करके आत्मा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है।

ब्रह्मरन्ध्र में जब योगेश्वर जाता है, तो वह सर्व ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करता है। तो यज्ञशाला में ईशान कोण में कलश होता है। और ईशान कोण में ही ज्योति विद्यमान होती है। ज्योति को योगी ध्यानावस्थित करता है। कलश उसे कहते हैं, जो कुंभाकार बनाता है। जहाँ इसमें जल ओत-प्रोत होता है। इसमें अमृत होता है। वह अमृत प्राण की वृष्टि कर रहा है, ज्ञान की वृष्टि कर रहा है। कलश स्वस्तिः के देने वाला है।

उसको पान करने से सरस्वती आती है। अमृत के ही पान करने वाले सरस्वती को अपने में धारण करते हैं। वह ईशान मां काली का सातवां भुज कहलाता है।

आठवां जो भुज है वो दक्षिणाय कृति कहलाता है। इसमें विद्युत समाहित हो करके और पश्चिम दिशा से अन्न का भंडार लेकर के इस मानव को भरण कर देती है।

संसार में प्रत्येक स्थान में माँ दुर्गा का पूजन होता है। माँ दुर्गा क्या है? माँ दुर्गा भी वह सन्ध्या है। हे माँ

दुर्गा! तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है। हे माता दुर्गे! तुझे अष्ट भुजाओं वाली कहा जाता है। तू वास्तव में अष्ट भुजाओं वाली है। जब तू आठ भुजाओं को लेकर संसार में आती है तो यह संसार प्रकाशमान हो जाता है। सिंह तेरा वाहन है। तू सिंह रूपी वाहन पर सवार होकर आ, और आ करके दैत्यों को शांत कर और देवताओं की रक्षा कर। माता दुर्गे! तू वास्तव में कल्याण करने वाली है। तू वास्तव में हमारे जीवन को, हमारे हृदय को उदार बनाने वाली है। मल, विक्षेप आवरण को शांत करने वाली है और निर्मल और स्वच्छ बना देती है। अष्ट भुजाओं वाली दुर्गा कौन है? जिसकी अष्ट भुजाएं हैं। दुर्गा नाम है विद्या का। विद्या किसी के आधार पर आती है। विद्या का जो वाहन है वह भी विचित्र है। वह सिंहनाद है, जिसके आधार से विद्या आती है। यह अष्ट भुजाओं वाली विद्या अष्ट भुजाओं वाली दुर्गा कौन है? जब मनुष्य ज्ञान के मार्ग में जाता है तो विद्या को पान करने वाला बन जाता है। उस समय यह दुर्गा, यह विद्या इस ब्रह्माण्ड का जिसमें आठ दिशाएं हैं उनका ज्ञान करा देती है। उसके ज्ञान और विज्ञान को मानव जान जाता है कि पूर्व में क्या है? पश्चिम में क्या है? उत्तर में क्या है? दक्षिण में क्या है? उन दोनों के माध्यम में क्या है? आठों दिशाओं को जानने वाला जिज्ञासु दुर्गा का अनुकरण करता है। दुर्गा माता की पूजा कैसे की जाती है? दुर्गा माता की पूजा मनुष्य उस काल में कर सकता है जब उसके द्वारा ज्ञान होता है, विद्या होती है, सिंहनाद होता है। सिंहनाद कौन-सा है? जिससे अपराधियों को कुचला जाता है। अज्ञान रूपी पशुओं को शांत किया जाता है। हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। तो माँ दुर्गे भी सन्ध्या है।

हे संध्या! तू हमारा कल्याण करने वाली है। माता! जब यह संसार तेरे आँगन में आ जाता है। राजा यदि तेरा अनुकरण करता है तो राजा महान बन जाता है। मेरी माताएं तुझे कंठ में धारण कर लेती हैं तो उनके गर्भ में वह बालक उत्पन्न होते हैं जो देवता बन जाते हैं। आज तेरा अनुकरण करने वाले देवता बन जाते हैं आज तू सबको देवता बनाने वाली है। जिस समय मेरी प्यारी माताओं का अन्तःकरण पुकार कर कहता था, मानव का अन्तःकरण पुकार कर कहता था कि हम संसार में अपने भोगों को भोगने के लिए आएं हैं, हमें ऐसा कार्य नहीं करना है कि भोग ही हमें भोग लें।

तो प्रभु का गुण गान गाने के पश्चात् प्रभु को रक्षक बनाते हैं। प्रभु हमें हिंसक प्राणियों से बचाओ। उनसे हमारी रक्षा करो। एक समय वह आता है, जब परमात्मा रक्षक बन जाता है और हमारा कल्याण करने लगता है।

प्रभु मानव का कल्याण किस काल में करता है? जब हम प्रभु के आँगन में जाने योग्य हो जाते हैं माता अपने प्यारे पुत्रों को, लोरियों का पान किस काल में कराती है? जब प्यारे पुत्र व्याकुल हो जाते हैं और माता की याचना करते हैं तब वह माता अपने पुत्रों के भाव को जान लेती है कि मेरा पुत्र क्षुधा से व्याकुल है। जिसे अपनी लोरियों में लगाकर आनन्दित करा देती है। इसी प्रकार वह परमात्मा हमारी रक्षा किस काल में करता है जब हम व्याकुल हो जाते हैं और व्याकुल हो करके वैराग्य हो जाता है। केवल उस परमात्मा का ध्यान रहता है। उस काल में परमात्मा हमारा रक्षक बन करके हमारा कल्याण करता है।

तो हे विद्या! तू हमारा कल्याण करने वाली है। माता! जब यह संसार तेरे आँगन में आ जाता है। राजा यदि तेरा अनुकरण करता है तो राजा महान बन जाता है। मेरी माताएं तुझे कंठ में धारण कर लेती हैं तो उनके गर्भ में वह बालक उत्पन्न होते हैं जो देवता बन जाते हैं आज तेरा अनुकरण करने वाले देवता बन जाते हैं आज तू सबको देवता बनाने वाली है।

२ आराधना

वेद मन्त्र, उस ब्रह्म की उपासना के लिए प्रायः हमें प्रेरित करता रहता है। हे अग्ने! तू प्रातः काल की अग्नि है। जब तू प्रातः काल में उद्बुद्ध होकर के प्रकाश को लेकर के आती है। तो वह प्रकाश अन्धकार को नष्ट कर देता है। अन्धकार को अपने में निगल जाता है। परन्तु वही अग्नि का प्रकाश, गृहों में प्रवेश हो रहा है।

हे प्रभु! तू कितना विज्ञानमयी स्वरूप है। तू कितना विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है। सूर्य प्रातः कालीन मानव को प्रकाश देता है और रात्रि रूपी अंधकार को नष्ट कर देता है। हे परमात्मन! आप कैसे विज्ञानवेत्ता है। आप कैसे सृष्टि चक्र को गतियाँ दे रहे हैं अथवा इसका नियमन कर रहें है। हे भगवान! आप महान और विचित्र कहलाते हैं। जब हम प्रातःकालीन यह विचारते है कि हम कहीं भी चले जाएँ, परन्तु हमें कोई भी स्थली ऐसी दृष्टिपात नहीं आती, जहाँ आप की प्रतिभा हमें प्रतिभाषित नहीं होती। पूर्व में जाते हैं तो अग्नि के रूप में आप ही प्रकाश को ले करके उद्दीप्त हो रहे है। हम दक्षिण दिशा में जाते हैं। तो वहाँ इन्द्र बन करके, आप ही अमृतमयी धारा प्रदान कर रहे हों। जब हम पश्चिम दिशा में जाते हैं तो वहाँ वरूण बन करके, अनन्त, महानता के भण्डार में युक्त होते हुए, आप वहाँ वरुण कहलाते हैं। जब हम उत्तरा में जाते है तो वहाँ सोम के रूप में आपकी वृष्टि हो रही है। आप सोम को प्रदान कर रहे हो। यह सारा जगत सोम में दृष्टिपात आता है। और जब हम ध्रुवा में जाते हैं तो नम्रता से ही पालन होता हुआ, वहाँ आप ही विष्णु के रूप में विद्यमान है। हे प्रभु! आप कैसे विष्णु हो? यदि नम्रता नहीं आती, तो मानव भी अपने जीवन का पालन नहीं कर सकता और यह नम्रता ही विष्णु के रूप में उद्दीप्त रहती है।

माता के जीवन में यदि विष्णु रूप नहीं है, तो वह बालक का पालन नहीं कर सकती, पुत्र का पालन करने में शून्य हो जाती। वही माता विष्णु रूप बनकर के ध्रुवा में, नम्रता में अपनी आभा को प्रगट कराती रहती है। प्रभु! आप भी पालन करने वाले हैं। एक माता अपने पुत्र का पालन कर सकती है। परन्तु यह जो नाना रूपों में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है। ये जो सर्वत्र जगत के प्राणी मात्र, प्रत्येक लोक लोकान्तरों में जो प्राणी वास कर रहे हैं उसका कौन पालन कर रहा है? माता तो केवल एक पुत्र-पुत्री का पालन करती है। तो उसे विष्णु कहते हैं परन्तु आप तो कितने विशाल विष्णु है कैसे अनुपम विष्णु हैं, जो संसार का पालन कर रहे हो, ये रचाने के पश्चात रचाना और पालन करना, ये प्रभु! आपकी नम्र वृत्तियाँ है। आप ध्रुवा में रहने वाले विष्णु है। हे विष्णु! तू ध्रुवा में पालन करने वाला है। तू पालना का एक स्रोत है। सत्य से ही पालन होता है। और वह विष्णु ही सत्य है। ध्रुवा में, नम्रता में रहने वाला है।

यदि जीवन में नम्रता नहीं आती तो जीवन की सार्थकता समाप्त हो जाती है। यदि जीवन में नम्रता का स्रोत नहीं आता तो प्रभु! की महती को हम नहीं जान सकते। यदि नम्रता नहीं आती तो हम एक दूसरे का सहयोग नहीं कर पाते। तो इसलिए नम्रता आना बहुत अनिवार्य है। नम्रता के साथ में विवेक की, प्रतिभा की अनिवार्यता हो जाती है। इसी प्रकार वह विष्णु कैसा है? वह ध्रुवा में भी है, ऊर्ध्वा में बृहस्पति बन करके रहता है। हे ऊर्ध्वा में गति करने वाले! आप बृहस्पति है। आप आचार्य हैं, गुरुजन है। आप गुरुजन बनकर के हमारा कल्याण कर रहे हैं। वही वर्षा का स्रोत माना गया है।

तो ऊर्ध्वा में गति कराने वाला कौन? वह हमारा बृहस्पति बन करके, हमें ज्ञान और विज्ञान का, स्रोत बनकर के, हमें उसकी आभा में रमण करा रहा है।

तो विज्ञान में रत्त रहने वाला मानव, अपने में ग्रहण करने लगता है, कि वह जो प्रभु है वह ऊर्ध्वा में,

बृहस्पति बन करके रहता है। हे बृहस्पते! तू आ, हमारा कल्याण कर, हमें ज्ञान दे, हमें मेधावी बुद्धि प्रदान करके हमें, ऋतम्भरा में प्रवेश करा। हे ऊर्ध्वा में गति करने वाले बृहस्पति! तू आ, तू बृहस्पति बन करके हमारा कल्याण कर रहा है। जब इन वाक्यों पर विचार-विनिमय प्रारम्भ होता है। कि पूर्व दिशा में तो अग्नि बन करके रहता है और दक्षिण में तू इन्द्र बनकर के रहता है, और पश्चिम में तू वरुण बन करके रहता है। और उत्तरायण में सोम बन करके रहता है। और ध्रुवा में विष्णु बन करके रहता है। ऊर्ध्वा में बृहस्पति बन करके रहता है तो प्रभु! वह कौन-सा स्थान हमारे लिए ऐसा है, जो हम किसी प्रकार की, तेरे राष्ट्र में धृष्टता कर सकें। हमें कोई भी स्थली ऐसी दृष्टिपात नहीं आती, जहाँ हम पापाचार, कर्म करने के लिए तत्पर हो जाए। जहाँ भी हमारा मन जाता है। वहीं आपकी प्रतिभा दृष्टिपात आती है, वहीं आपका ज्ञान और विज्ञान हमें दृष्टिपात आता है तो प्रभु वह कौन-सी स्थली ऐसी है, हे देव! जहाँ हम आपको त्याग करके चले जाएँ, और हम पाप कर्म में तत्पर हो जाए। क्योंकि हम जहाँ पर जाते हैं वहीं आपकी प्रतिभा निहित है, वहीं आप विद्यमान है। तो कोई स्थली ऐसी नहीं, जहाँ वह परमपिता परमात्मा न हो और हमें किसी प्रकार का अवकाश प्राप्त हो जाए। परन्तु ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में जाने की आवश्यकता है। चिन्तन और मनन करने की आवश्यकता है। इसीलिए प्रत्येक मानव को प्रातः कालीन ब्रह्मयाग करना चाहिए।

तो हे प्रातः काल की अग्नि! तू प्रकाश ले करके आती है वह अग्नि सूर्य के साथ-साथ, उषा किरण को, कहीं कान्ति किरण को, कहीं श्रेणकेतु किरण को ले करके, वह सूर्य अपने में भासता रहता है। आदित्य बन करके तू प्रकाश देता है। तो वह प्रकाश, सूर्य से ही तो प्रातः काल बन गया है। उस सूर्य के, उस अग्नि के कारण ही सम्वतसर बन गया है। अहोरात्र बन जाता है। अहोरात्र भी इसी के कारण, बनता है। इसीलिए सूर्य के कारण प्रकाश से ही दिन और रात्रि में भेदन हो जाता है। दोनों के भेदन रूपों में वह वर्णवृत्तियों में अवकाश दृष्टिपात आता है।

उसको कहीं अहिल्या में, कहीं उषा में, कहीं शान्ता में परिवर्तन करने वाले ऋषि मुनि अपने में परिवर्तित करते रहते हैं। इस ब्रह्माण्ड का विभाजन होता रहता है। अपने में वृत्तियों को पार करता हुआ, अपने को पार ले जाना चाहता है। तो विचार क्या? हे प्रभु! आप प्रातः काल की अग्नि बनकर के हमें संध्या के उस मुग्ध रूप में, एक संधि में परिणत करा देती हो। संधि दोनों के मध्य में विद्यमान, दोनों का मिलान होना ही सन्धि हो जाना है। जैसे रात्रि और दिवस दोनों का जहाँ सन्निधान सम्मिलन होता है। उसी को सन्धि काल कहते हैं। उसी को संधि कहते हैं। संधि का अभिप्राय है, मिलन।

तो जब अंधकार और प्रकाश दोनों का मिलन होता है। तो संधि हो जाती है। एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं अथवा उसमें रत्त हो जाते है। तो रत्त होकर के संधि बन जाती है। इसी प्रकार जब प्रातःकाल की, तू पूर्व दिशा में, प्रकाश लेकर, के आती है। प्रकाश को ऊर्ध्वा में गति करा देती है।

परन्तु प्रातः काल की यह जो भव्य अग्नि बन करके आती है और मानव को प्रकाश देती है तो उस प्रकाश में मानव संध्या की गोद में परिणत हो जाता है। यही संधि, कहीं ब्रह्मा के कमण्डलु में रहती थी, कहीं शिव की जटाओं में रहने वाली थी। ब्रह्मा के कमण्डलु में यह स्वर्ग में और मोक्ष में रहने वाली संधि कहलाती है। जहाँ आत्मा और परमात्मा दोनों का मिलन होता है दोनों की संधि होती है तो इसको मोक्ष कहते हैं। वह ब्रह्मा का कमण्डलु बन जाता है और कमण्डलु बन कर उसमें अमृत भरा रहता है। उसी में सन्ध्या अपने में रत्त रहने वाली है। यही तरंगे, वह मोक्ष से आकर के, संसार में आ गई। संसार में प्रत्येक मानव कहता है कि मैं संध्या कर रहा हूँ, मैं संध्या में रत्त रहना चाहता हूँ। मैं सन्ध्योपासना प्रातः काल और सांय काल करना चाहता हूँ, तो यह वही

ब्रह्मा के कमण्डलु वाली एक संधि कहलाती है। जिस संध्या को लेकर के मानव मन और प्राण बना, दोनों का समावेश चाहता है। क्योंकि मानवीयता में एक प्राणस्तव है, एक मनस्तव है दोनों की संधि चाहता है। दोनों के मध्य में, जो विभाजनवाद की प्रतिक्रियाएँ बन गई हैं। उस विभाजनवाद को वह शांत करना चाहता है।

यह संधि की प्रतिभा कहलाती है। हे प्रातः काल की अग्नि! तू प्रकाश को लेकर के आती है। अंधकार को अपने में समाहित कर देती है। जैसे सूर्य उदय होने पर अहिल्या को अपने गर्भ में धारण कर लेता है। जैसे सूर्य उदय होने के पश्चात चन्द्रमा को अपने में रत्त कर देता है। नाना तारा मण्डल इसी में रत्त हो करके नित्यप्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ कर रहे हैं। क्रियाकलाप हो रहा है। विचित्रता में वह क्रियाकलाप, एक अपनी महानता का द्योतक बनकर के प्रभु की आभा में रत्त हो रहा है।

तो जैसे प्रातः काल की अग्नि बन करके, आती है, परन्तु दक्षिण दिशा में वही इन्द्र बन करके रहती है। इन्द्र कहते है जो राजाओं का भी अधिराज है। परमपिता परमात्मा का नाम इन्द्र कहलाया जाता है। परन्तु तत्त्वों में विद्युत, यह जो प्रकाश देने वाली है, इसको भी हमारे यहाँ इन्द्र कहते हैं। इन्द्र नाम वायु का वाची कहलाता है। जिस भी काल में समुद्रों से जलों का उत्थान होता है और यह अग्नि उष्ण बना करके जल का आरोपण कराती हुई, दक्षिण दिशा से अग्नि के परमाणु उत्तरायण को प्राप्त हो जाते हैं। दक्षिणायान से जब गति करते हैं तो उत्तरायण में समावेश होकर के वही सोम के रूप को धारण कर लेते हैं। सोम बन करके वृष्टियाँ हो रही है।

तो इन्द्र बन करके एक आभा में मानव को प्रवेश करा रहा है। वह अग्नि में प्रतिभाषित हो करके, वह दिशाओं का द्योतक बना हुआ, दिशाओं, का निर्माण भी इन्द्र के द्वारा होता है। वही वरुण बन करके वही, परमाणु इन्द्र के रूप में, विद्युत की आभा में, और वायु की वृत्तियों में रमण करती हुई वही वनों में प्रवेश कर जाती है। जितना भी, जीवन की धाराओं का स्रोत कहलाता है। वह वरुण कहलाता है। हे वरुण! तू आ, हमें वृष्टि कर, और हमारे अन्नाद को, गृह में भरण कर।

कृषक इस वरुण की उपासना करता है। कृषि कर रहा है, यजन कर रहा है। और कह रहा है कि हे वरुण! तू आ, हमें वृष्टि कर। ये पृथ्वी जब वरुण की पिपासी रहती है। जब ये ग्रीष्म ऋतु में तपा करती है और तपती हुई तपायमान हो करके याचना करती है और यह अपने में, तपोमयी सोम, वरुण के लिए तपा करती है। वरुण वही जीवनी शक्ति के रूप में, अपने को परिवर्तित करता हुआ, समुद्रों से मिलान करता हुआ, मेघों की वृष्टि मेघों का उत्पन्न होना और मेघ बनकर के इन्द्र उनके ऊपर प्रहार करता है। और जब वह प्रहार करता है। तो मेघों को छिन्न भिन्न हो जाना, मेघो में जो वृष्टि समुद्रों से आई है उसका धीमी-धीमी वृष्टि के रूप में परिणत हो जाना, वह धीमी वृष्टि बनकर के, वरुण बनकर के, वह अन्न का द्योतक कहलाता है। वनस्पतियों में जीवन आ जाता है और अन्नाद की उत्पत्ति हो जाती है पृथ्वी के गर्भ में वह जो अग्नि का भण्डार है। जो अग्नि पृथ्वी में अभी तपा रही थी, उसमें शांति आ जाती है। वह अपने में सोम बन जाती है। वह अपने में सोम बन करके पृथ्वी को निर्माण की शक्ति प्रदान कर देती हैं।

वही तो अग्नि की धाराओं में रत्त रहने वाला, एक वृत्त कहलाता है। वह जो सोम है वही अन्न का भण्डार, अन्न की प्रतिभाषितता में वायु वेग में गति कर रहा है। वरुण को लेकर के गति कर रहा है। और वह आगे चल करके सोम बन जाता है। वही वरुण सोम के रूप में परिवर्तित होता हुआ, सोम बनकर के ज्ञानियों का ज्ञान है, और वैज्ञानिकों का विज्ञान है और ध्यानावस्थित होने वालों का ध्यान है और वह सोम बन करके रहता हैं।

हमारे यहाँ जहाँ वेदों से सोम की वृष्टि होती है। यह पृथ्वी अपने में सोम को धारण करती है। बाह्य जगत में, सोम ज्ञान को कहते हैं, आध्यात्मिकवाद में जब प्रवेश करते हैं तो सोम ही ज्ञान बनकर के रहता है। सोम ही

अद्भुत, मोक्ष की प्रतिभा का एक स्रोत बनकर के रहता है। वही सोम ज्ञान का, विज्ञान का पुंज कहलाता है। उसी सोम से मानव में सौम्यता आ जाती है, पवित्रता आ जाती है क्योंकि वह प्रभु सोम कहलाता है। वह प्रभु सोम की प्रतिभा में रत्त रहने वाला है। वही सोम अमृतमयी धाराओं में रमण करता है, सोम को ऋषि मुनि अपने में धारण करते हैं, सोम को, मूलाधार से लेकर के नाभिचक्र में ये जो इंगला, पिंगला, सुषुम्णा तीन प्रकार की नाड़ियाँ कहलाती है। मूलाधार से इन नाड़ियों का चलन होता है। इन्हीं में प्राण अपनी प्रतिभाषितता में गति कराता रहता है। उसी में उदान अपने में रत्त होकर के चित्त के मण्डल को लेकर के, आत्मा की प्रतिभा को लेकर के मूलाधार से वह गति करता है। और गति करता हुआ वही नाभिचक्र में, नाभिचक्र को हमारे यहाँ अयोध्याचक्र भी कहते हैं।

इस शरीर को, अयोध्या के रूप में भी परिणत किया गया है। जिसमें एक आत्मा वास करता है और वह मोक्ष के लिए इस पुरी में आया है तो वह अयोध्यापुरी है जो किसी से विजय नहीं हो पाती। विजय करने वाला, विजय करता है। उसको दशरथ कहते हैं। क्योंकि दशरथ वह कहलाता है जो इन्दियों को विजय करने वाला हो।

परमपिता परमात्मा सोम के रूप में विद्यमान है। जिसको योगीजन पान करते हैं। वही परमपिता परमात्मा विष्णु के रूप में परिणत रहते है। वह जो विष्णु है, जो हमारा कल्याण कारक है, जो हमारा पालन करने वाला है, वो पालक कहलाता है। हे विष्णु! तू संसार को रचाता है। रचाने के पश्चात इसका पालन करता है। जैसे माता अपने पुत्र की गर्भ में पालन कर रही है और बाह्य जगत में आकर उसका पालन भी करती है, हे विष्णु! तू कहीं यज्ञोमयी विष्णु बन करके रहता है। कहीं राष्ट्रीयता राजा में ही विष्णु बन करके रहता है। कहीं तू सूर्य के रूप में विष्णु बन करके रहता है। कहीं तू समुद्रों के रूप में विष्णु बनकर के रहता है। परमपिता परमात्मा चेतना के रूप में एक विष्णु बनकर के रहता है। तू विष्णुश्चम् कहलाता हैं। तो हे विष्णु! तू कल्याण कारक है। तू कल्याण करने वाला है। जो हमारा पालन कर रहा है। वह विष्णु है जो ऊर्ध्वा में, बृहस्पति बनकर के सर्वत्रता में रत्त रहने वाला है, वह बृहस्पति कहलाता हैं। वह कैसा बृहस्पति है? कल्याण कारक है। हमें ज्ञान देता है। चरणों में विद्यमान होकर, अपनी आभा में प्रवेश कराता है। अपनी आभा में आभायित होता हुआ, ब्रह्मचारी को अपनी वृत्तियों को प्रदान करता रहता है।

तो वह परमपिता परमपिता विष्णु बनकर के हमारा कल्याण कर रहा है। आभा में प्रगट करा रहा है। वह परमपिता परमात्मा सर्वत्रता में विद्यमान है। कहीं इन्द्र बनकर के रहते हैं। कही वरुण बन करके रहते हैं, कहीं सोम बन करके रहते हैं। कहीं विष्णु और बृहस्पति बन करके रहते है।

इसीलिए हे भगवन्! हे मातेश्वरी! तू संध्या बनकर के हमारा कल्याण कर। यही संध्या मोक्ष के रूप में, ब्रह्मा के कमण्डलु में रहने वाली है। ब्रह्मा के कमण्डलु में प्रवेश करने वाली, यही औषध बन करके और जन-जन के हृदयों में समाहित हो रही है। प्रत्येक वाक् में यह संधि करना चाहता है। जब यह समाज के द्वार पर आता है तो समाज से संधि चाहता है। जब यह एकान्त स्थली पर विद्यमान होता है तो कहता है हे मन! तू बड़ा चंचल है। तेरी सन्धि किस काल में होगी? तो शांत हो करके ये प्राण से अपनी संधि चाहता है। प्राण और अपान दोनों का समावेश करना चाहता है। समावेश करके वह एकोकी आत्मा में प्रवेश करके, मोक्ष के द्वार पर जाना चाहता है। यह संधि, जहाँ से आई है वहीं के लिए पुकार रही है। आओ, तुम उसके कमण्डलु में प्रवेश हो जाओ। जो मोक्ष रूपी कमण्डलु है इसमें तुम प्रवेश हो जाओ। इसी में तुम रत्त हो जाओ। ये ब्रह्मा का कमण्डलु कहलाता है। इसके ऊपर मानव परम्परागतों से अपनी कृतिकाओं को रमण करता रहता है।

हम संधि में होकर के ऊर्ध्वा में कर्म करने के लिए तत्पर हो जाए। जब रात्रि और दिवस दोनों का संधि काल आता है। तो वह न रात्रि के रूप में, न वह अंधकार के रूप में, न प्रकाश के रूप में, वह अपनी संधि को

जान करके वह या तो प्रकाश में जाना चाहता है या अंधकार में जाना चाहता है। परन्तु प्रातः काल की संधि प्रकाश को लेकर के आती है और सांयकाल की संधि, अंधकार, रात्रि को लेकर के आती है। उसमें रात्रि का अधिपति सोम कहलाता है और वह दिवस का प्रातःकाल की संधि का स्वामी आदित्य कहलाता है। वह प्रकाश में रत्त हो जाता है।

तो यह विचित्र संधिकाल है, जिसको हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते हुए, हे प्रातः काल की अग्नि! तू प्रकाश को देकर मानव को प्रकाश में ले जाना चाहती है।

हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, प्रभु की उपासना करते हुए, प्रभु को एक-एक कण-कण में स्वीकार करते हुए, पापाचार से दूरी होकर के प्रभु के द्वार पर चले जाएँ, अपने प्रभु से संधि कर ले। जहाँ से हमारा विच्छेद हुआ है, वहीं से अपनी संधि करके प्रभु में रत्त हो जाएँ। ०७.०५.१९८५

३ ब्रह्मयाग का अभिप्रायः

पंच महायागों में सबसे प्रथम ब्रह्मयाग माना गया है ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? जिसमें ब्रह्म की मीमांसा की जाती है, ब्रह्म के ऊपर चिंतन किया जाता है ब्रह्म के स्वरूप पर ब्रह्म का विचार होता है।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव कजली वनों में विराजमान होते थे तो प्रातः काल में, तो ब्रह्म की प्रतिभा के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करते थे नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों को निहारने लगते थे, और यह विचारने लगते थे कि-प्रभु! तू कितना विचित्र है तेरी कैसी विचित्रता है, प्रभु! यह कैसा अनुपम जगत है कैसे लोक-लोकान्तर हैं, प्रभु! तेरे राष्ट्र में एक-दूसरा मण्डल एक दूसरे मण्डल से मिलान न करता हुआ कैसा चक्र चल रहा है। ऋत और सत में सर्वत्र जगत गति कर रहा है अपने-अपने आँगन में गति कर रहा है जैसे माला है और माला में मनको में धागा है। एक ही धागे में मनके पिरोये जाते हैं जब प्रत्येक मनके धागे में पिराये जाते हैं तो वह माला बन जाती है इसी प्रकार यह लोक-लोकान्तरों की माला है, यह उस ब्रह्म की माला है जिस माला को धारण करने वाला ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्म क्या है? ब्रह्म जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में इस माला को गुथा है, माला का सृजन किया है उस माला को धारण करने वाला यह आत्मा है वह इस प्रकृति के नाना तत्त्वों का जानता है, भौतिक और आध्यात्मिकवादी दोनों में गति करना चाहता है १००८१९७५

प्राण, मन को अपने में धारण करा देता है और मानव जब दोनों के मध्य की सन्धि कर देता है तो वह उसका सन्धि काल बन जाता है उसे हमारे यहाँ ब्रह्मयाग में परिणत किया जाता है, ब्रह्मयाग में उसका साकल्य आहुति प्रदान कर देता है ऋषि अपने ऊर्ध्वा आसन पर विद्यमान है। प्रातःकालीन ब्रह्मयाग में ब्रह्मचारी परिणत हो जाते, ब्रह्म का चिन्तन करना ब्रह्म की प्रतिभा को दृष्टिपात करना कि वह ब्रह्म कैसा अनुपम है? उसके ऊपर अध्ययन करने को ब्रह्मयाग कहते है जब हृदय का, अन्तरात्मा का सबका एक समन्वय हो जाता है और ब्रह्म ही ब्रह्म को अपने हृदयों में दृष्टिपात करते है। जैसे योगीजन पांच ज्ञानेन्द्रियों का जो विषय है अथवा उनका जो साकल्य है, वह प्रायः अपने हृदय में स्थित कर देता है। साधक का यह क्रियाक्लाप रहता है, नेत्रों से दृष्टिपात करता है रूप को लाता है वह भी हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है। जैसे रसना से नाना प्रकार के रसों को ला करके, हृदय में प्रतिष्ठित कर देता है, श्रोत्रों से शब्द को ले करके वह भी हृदय में है वह नेत्रों की ज्योति भी हृदय में प्रवेश हो जाती है तो योगीजन पांचों ज्ञानेन्द्रियों के रूप, रस गन्ध इत्यादि को ले करके अपने हृदय में स्थित करके उसका साकल्य बनाता है उसका साकल्य बना करके, वह हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करता है। वह ब्रह्म में ही याग कर रहा है वह ब्रह्म का ही चिन्तन कर रहा है।

ब्रह्म को अपने में और अपने को ब्रह्म में जो स्वीकार करता है वह ब्रह्मयाग में परिणत हो गया है। वही तो ब्रह्मवत कहलाया गया है। ब्रह्म नाम परमात्मा का है जो सर्वत्र व्याप्त रहता है और व्यापक है और व्याप्त रहने से वह ब्रह्म है। वह आनन्दमयी है आत्मा का स्रोत है आत्म तत्त्व उसी से बनते है । ०२ ०८ १९८७

सबसे प्रथम ब्रह्मयाग में परिणत होना है और ब्रह्मयाग को चिन्तन में और अपनी क्रियाओं में लाना है। ब्रह्म का यह जगत है एक दूसरी तरंग दूसरी तरंगों में परिणत हो रही है। यह प्रभु का जगत है। नाना प्रकार के लोक लोकातंर है। उन लोकों की एक माला बनी हुई है। उन लोकों का एक रूद्र रूप बना हुआ है और वह उन दोनों को एक दूसरे में पिरोया हुआ सा दृष्टिपात करता है। और अपने को भी उसमें पिरोया हुआ दृष्टिपात करता है जब वह उसको अपने में पिरोया हुआ स्वीकार करता है तो वह तपस्या में परिणत हो जाता है, वह तपस्वी कहलाता

है। कही वह प्राणायाम करने लगते है। कहीं वह खेचरी मुद्रा में परिणत हो करके, संकल्पोमयी प्राणायाम में परिणत हो जाते है और संकल्पोमयी प्राणायाम में परिणत हो करके प्राण, उदान और समान को एकाग्र करके सूर्य और चन्द्र दोनों स्वरों में प्राण को दृष्टिपात करते रहते है।

तो वह प्राणायाम करके तपस्वी बन जाते है वह संकल्पोमयी प्राणायाम है, संकल्पों में जीवन बन गया है, संकल्पों में वह प्रभु के जगत को विचारने लगता है जब एक-एक, कण कण में अपने को और प्रभु को विचारने लगता है तो जानो वह तपस्वी प्राणी कहलाता है। वह तपों में परिणत होता हुआ अपने में ही अपने प्रभु का दर्शन करता हुआ प्रभु के ज्ञान और विज्ञान को अपने में धारण करता हुआ इस सागर से पार होने का प्रयास करता है। १५ ०१ १९८८

ब्रह्मयाग उसे कहते है जहाँ ब्रह्म का चिन्तन होता रहता है। अपने आसन को त्याग करके, प्रातःकालीन अपने गृह में जो ब्रह्मयाग करता है ब्रह्म का चिन्तन करता है वह पुरूष ब्रह्मयागी कहलाता है। ०८ ०८ १९९०

जब हमारे जीवन में बुद्धि और मन दोनों पवित्र बनेंगे तो हम राष्ट्र को पवित्र बना सकेंगें और वही राष्ट्र यौगिकवाद में कहलाता है स्वयं अपने में पुरूषार्थ करना और अध्ययनशील रहना ब्रह्मयाग में परिणत होना है जो ब्रह्म की आभा में रत्त रहता है और ब्रह्म का चिन्तन करता है वह ब्रह्मवादी कहलाता है तो ब्रह्मवादी बन करके ही हम अपने गृह को ऊँचा बना सकते हैं।१७ ०४ १९९१

जिसमें राजा के राष्ट्र में ब्रह्मचर्चाएँ होती रहे हैं अथवा ब्रह्मयाग होते रहे। जहाँ ब्रह्मयाग होता रहता है उस राजा का राष्ट्र पवित्र माना गया है। जब हम ब्रह्मयाग की चर्चाएं करते हैं तो प्रायः हृदय गदगद् हो जाता है। २१.०१.१९९२

प्रत्येक मानव को साधना की आवश्यकता है प्रत्येक मानव को साधक बनने की आवश्यकता है। क्योंकि साधक वही बनता है जिसे प्रभु की पिपासा जागरूक हो जाती है। जो ब्रह्मयाग और देवयाग दोनों को एक ही सूत्र के मनके के रूप में स्वीकार कर लेता है, एक ही माला के दोनों मनके हैं और दोनों को एक दूसरे में पिरोना है क्योकि देवयाग बाह्य जगत और ब्रह्मयाग आन्तरिक जगत दोनों का भान करा देता है।०२ १० १९८४

मृत्यु को विजय करने वाला ब्रह्म का चिन्तन करना चाहता है। जो ब्रह्म का चिन्तन करता है और अपने अन्तर्हृदय में यह स्वीकार करता है कि यह तो मेरा कर्तव्य है। क्योंकि मैं अपने सखा और पिता की सृष्टि के महत्त्व को अपने में धारण करना चाहता हूँ तो वह मृत्यु´्जयी बनने के मार्ग का पथिक बनने लगता है। उस मार्ग से वो गतिशील होना प्रारम्भ हो जाता है। ०२ ०९ १९८५

तुम विष्णु बनो। हृदय में अग्न्याधान करो, ब्रह्मचरिष्यामि बन करके अपने हृदय स्थल में ब्रह्मयाग का आह्वान करता है, अपने में रत्त हो जाता है। तो ब्रह्मचारी अपनी इन्दियों को संकल्पवादी बना करके, अपने हृदय में ज्ञान रूपी अग्नि को प्रदीप्त करते है। जब ब्रह्मचारी अध्ययन करता है तो ब्रह्मवर्चोसि का पालन करता रहता है। जिससे उसकी मानवीयता महानता में परिणत हो जाती १७.१०.८५

ब्रह्मयाग का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म के ऊपर चिन्तन और मनन करते हुए अपने को उसमें समाहित करना हैं। ज्ञान और विज्ञान की जो उड़ानें हैं, आध्यात्मिकवाद की जो उड़ानें हैं, ये परम्परागतों से मानवीय मस्तिष्कों में प्रायः होती रही है। ०१ ०१ १९८७

ब्रह्मयाग का अभिप्रायः यह कि ब्रह्म का चिन्तन करना है, जिस परमपिता परमात्मा ने, इस मानव शरीर की रचना की है, इस शरीर में क्या-क्या विद्यमान है? उसको न माता जानती है, न पितर जानता है, न आचार्य जानता है, न आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता, यह तो ऐसा गोपनीय विषय है, ऐसी गोपनीय रचना है, प्रभु की, जिससे उस प्रभु

का यशोगान गाना ही बहुत अनिवार्य है। क्योंकि जिस गृह में हमारा अन्तरात्मा वास करता है, हम वास करते हैं, अरे मानव! तुम उस गृह को ही नहीं जानते, कि उस गृह में क्या है? इस गृह में कितनी नस नाड़ियाँ हैं, कितना उसमें क्रियाकलाप हो रहा है। इससे ये सिद्ध हुआ है, कि सृष्टि के प्रारम्भ में मेरे प्यारे प्रभु ने संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है। यह यज्ञशाला निर्माणित होती हुई, इसमें परमपिता परमात्मा ब्रह्मा है और आत्मा संसार रूपी यज्ञशाला में यज्ञमान है। २० ०७ १९८७

ब्रह्म का चिन्तन क्या है? ब्रह्म के ऊपर विवेचना करना प्रारम्भ करते है। तो कहते है कि हे भगवन्! हे ब्रह्म! तू इस संसार के एक-एक, कण-कण में व्याप्त है। तेरी प्रतिभा एक अनूठी है। मानव के साथ में रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण की प्रतिभा का वास किया है। परन्तु जब हम विचारते हैं कि सतोगुण क्या है? और रजोगुण क्या है? और तमोगुण क्या है? रजोगुण में, शासन कहलाता है और सतोगुण में पालन कहलाता है और तमोगुण में उत्पत्ति का मूल विद्यमान रहता है। परन्तु ये तीनों गुण कहाँ प्राप्त होते हैं? वेद का एक मन्त्र कहता है। ये तीनों गुण माताओं से प्राप्त होते रहते हैं। माता पालन भी कर रही है शासन भी कर रही है और उत्पत्ति के मूल में भी विद्यमान हैं। ०७ ११ १९८८

ब्रह्मयाग उसे कहते है जहाँ ब्रह्म का चिन्तन किया जाता हो, ब्रह्म के चिन्तन करने के नाना प्रकार माने गये है। एक तो ब्रह्म का चिन्तन नेत्रों को आन्तरिक जगत में ले जाना है और जहाँ तक उसकी दृष्टि आन्तरिक जगत में, नेत्रों के साथ दृष्टिपात होती रहती है, वहाँ तक दृष्टिपात करते-करते आन्तरिक जगत में मौन हो जाए, उसकी सृष्टि को दृष्टिपात करते रहे। एक तो वह क्रियाकलाप होता है। द्वितीय यह है कि वाणी से प्रभु की महिमा का गुणगान गा रहा है, उसके गुणों का वर्णन कर रहा है, हे प्रभु! तू महान है। आज तूने हमारे, इस मानव शरीर को रचा है यह मानव शरीर नाना तरंगों पर विद्यमान है। जैसे सूर्य प्रकाश दे रहा है, वह नाना प्रकार की तरंगों वाला है, वह द्यौ की तरंगों पर स्थित रहने वाला है और नाना मण्डलों को तपाने वाला है। एक मण्डल, दूसरे मण्डल में, प्रतिष्ठित होता हुआ, हमें दृष्टिपात हो रहा है, यह उस महान प्रभु की महिमा और उसकी विचित्र सृष्टि है। २० ११ १९८२

ब्रह्म नाम परमपिता परमात्मा का है, ब्रह्म उसे कहते हैं, जो उत्पत्ति करने वाला है, ब्रह्म उसे कहते हैं जो वेदों के मर्म को जानने वाला, चारों वेदों को कण्ठाग्र करता हुआ, उसका उद्गीत गाता रहता है वह ब्रह्मा कहलाता है।

ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? जब मानव वेदों के ज्ञान से युक्त हो करके सुगन्ध देता है, विचार देता है, तो उसके विचारों में सुगंध होती है, सुगंध में विज्ञान होता है, विज्ञान में मेधा होती है, मेधा में ऋतम्भरा होती है, ऋतम्भरा में प्रज्ञा होती है, वहां योगी का योग सिद्ध हो जाता है। १६ ११ १९८६

हमारे यहाँ ब्रह्मयाग प्रायः मानवीय हृदयों में, तरंगों के रूप में तरंगित होता रहा है वह भूः भुवः स्वः इन तीन प्रकार की जो जगत की धाराएँ हैं, वह उनमें रत्त होता रहा है। १७ १२ १९८६

ब्रह्म इस प्रकृति के कण-कण में ओत-प्रोत है। इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती के ऊपर विचार-विनिमय करते रहते है। हमारे कर्मकाण्ड में हमारी वृत्तियों में पाँच प्रकार का वर्णन आता है। सबसे प्रथम ब्रह्मयाग कहा जाता है। जिस ब्रह्मयाग की हम चर्चा कर रहे है और वह ब्रह्मयाग कैसा है? प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन करना और परमपिता परमात्मा को सर्वज्ञता में दृष्टिपात करना है। हमारे अंग-संग रहने वाला, एक-एक परमाणुवाद में जो गमन करने वाला है, वह परमपिता परमात्मा है। उसकी जो रचना है, वह एक-एक, कण-कण में दृष्टिपात आती रहती है, उस परमपिता परमात्मा का जो स्वरूप है जब मानव अन्तर्मुखी हो करके चिन्तन करता है

तो प्रायः उसे वह दृष्टिपात आता है यह ब्रह्म उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता है। तो जब प्रभु की रचना के ऊपर, विचार-विनिमय करना प्रारम्भ करते है, तो वह ब्रह्मयागी कहलाता है क्योंकि ब्रह्म का चिन्तन करना, यह हमारा कर्त्तव्य है। ०४ ०३ १९८६

मानव के अन्तर्हृदय से एक भावना का जन्म होता हैं और उस भावना का अन्त अग्नि रूपी ज्ञान में स्वाहा हो जाता हैं तो उसे ब्रह्मयाग भी कहते हैं और ब्रह्म का चिन्तन करता हैं और ब्रह्म के सम्बन्ध में वह ऊँची-ऊँची उड़ाने उड़ने लगता है। १४ ०३ १९८८

ब्रह्म क्या है। ब्रह्म साकार है या निराकार हैं। ब्रह्म एक चेतना हैं। वह सर्वत्र रूप में परिणत है। और वह ब्रह्म ही इस ब्रह्माण्ड का नेतृत्व करने वाला हैं निर्माणवेत्ता हैं इसकी रचना के गर्भ में जो भी निहित रहते हैं जब इस प्रकार मनन करता हुआ, मौन हो जाता हैं तो वह ब्रह्माहुति कहलाती हैं वह ब्रह्माहुति में अपने को हूत कर देता हैं

राजा जनक के यहाँ ब्रह्मयाग होते रहते थे। ब्रह्मवेत्ता अपने-अपने आसनों पर विद्यमान रहते, ब्रह्म के सम्बन्ध में, अपनी-अपनी चर्चाएं करते रहते और मनन करते परन्तु जितना उनका सीमित अनुशासित एक विषय होता, उसके ऊपर अपनी विवेचना करके वह मौन हो जाते और अपनी आहुति दे करके अपने आसन पर विद्यमान हो जाते।

प्रातःकाल ब्रह्मयागी बन करके वह यह कहा करते कि हे प्रभु! तेरा राष्ट्र अनन्तमयी हैं तेरे राष्ट्र में से मैं कहीं दूरी नही जाता तेरा राष्ट्र अनन्तमयी जगत है, यौगिकवाद में जगत रमण करता है। १५ ०३ १९८९

राजा अपने राष्ट्र में महानता और महापुरूषों की क्रियाओं को ऊँचा बनाने वाला हो, प्रातःकालीन याग में अपनी क्रियाओं में रत्त रह करके ब्रह्मवेत्ता होना चाहिये, क्योंकि बिना ब्रह्मवेत्ता के, राजा को अभिमान आ जाता है। राजा जब ब्रह्मवेत्ता नहीं होगा तो राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकेगा, क्योंकि बिना ब्रह्मज्ञान के राष्ट्र ऊंचा इसलिए नहीं बनता, क्योंकि राजा के राष्ट्र में जब ब्रह्मवेत्ता नहीं होगा तो यह जो द्रव्य है, यह मानव की, बुद्धि को नष्ट कर देता है और जब बुद्धि नष्ट हो जाती है, तो मानव अकर्त्तव्यवाद में चला जाता हैं हिंसा में परिणत हो जाता है।

यदि राजा को अहिंसामयी बनना है तो वह वेदों का अध्ययन करे और याग में, अपने सुविचारों में संलग्न हो जाये, जिससे राष्ट्र उन्नत हो जाये और राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी, वेदों का गान गाने वाले उद्गाता रूप में गान गाने वाले होने चाहिए। राजा को भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों में संलग्न रहना चाहिए, जिससे प्रजा के विचारों का नवीनीकरण हुआ करता है।२८ ०१ १९८८

प्रातःकालीन ब्रह्मयाग का अभिप्रायः क्या है? कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना के रूप में रत्त हो जायें और उपासना करते रहे हैं हे देव! तू महान और विचित्र बन करके तू हमारे अंग संग रहने वाला है। तू अन्तरात्मा में विद्यमान है अन्तरात्मा हमारी हृदय रूपी गुफा में विद्यमान है और हृदय रूपी गुफा में वह चैतन्य देव प्रतिभा रूप में रत्त रहने वाला हैं, तो वह जब रहता है तो हमें ब्रह्मयाग करना चाहिए ब्रह्मयाग का अभिप्रायः यह है कि ब्रह्म के समीप जाने का हमें प्रयास करना चाहिए। ब्रह्म के समीप कैसे जाता है प्राणी? प्रातःकाल की पवित्र बेला में मानवीय जीवन को वह व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करता है। वह समष्टि में ले जाता है। संसार का जितना भी वैभव है, संसार की जितनी भी वृत्तियां हैं और जब इनसे उपराम होता है तो प्रत्येक वस्तु के मूल में कोई न कोई वस्तु तुम्हें दृष्टिपात आयेगी। जब तुम मन्थन करते-करते किसी वस्तु के अन्तिम चरण में पंहुचोगे, अन्तिम रूप में प्रवेश हो जाओगे, वहाँ स्थिर रहने का नाम ही प्रभु की पगडण्डी को ग्रहण करना है। जैसे एक मानव किसी के मूल में जाना चाहता है, विचारता है कि यह सतोगुण क्या है? विचारने लगता है कि मुझे सत्य उच्चारण करना है

विचारता है, सत्य क्यों उच्चारण करना है? सत्य के गर्भ में वह इन वाक्यों को विचार करके उसके गर्भ में प्रवेश कर जाता हैं और वह विचारता है कि सत्य भी है संसार में, प्रत्येक अंग और धाराएं सत्यता के गर्भ में निहित हो रही हैं। सत्य ही सत्य है जगत में, पालन करना भी सत्य है मानव से प्रीति करना भी सत्य है जब सत्य के गर्भ में प्रवेश कर जाओगे तो सत्य ही सत्य तुम्हें दृष्टिपात आने लगेगा।

तो तुम्हें व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश होना है विचार यही है कि व्यष्टि और समष्टि दोनो के रूप में ही तुम्हें रत्त हो जाना हैं, तो सत्य के मूल विचारते-विचारते अन्त में, प्रभु तुम्हें दृष्टिपात आने लगेगा, जब तुम, रजोगुण में शासनकर्त्ता के गर्भ में पंहुचोगे कि यह रजोगुण तो है परन्तु इसके गर्भ में शासनकर्त्ता है, माता पुत्र पर शासन कर रही है और शासन किस लिए कर रही है माता यह चाहती है कि मेरा शासन बाल्य पर इतना होना चाहिए, जिससे मैं अपने पुत्र को महान बना दूं जैसा मैंने पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि आचार्य अपने ब्रह्मचारी को अनुशासन में लाना चाहता है परन्तु वह रजोगुण है, रजोगुण के गर्भ में सत्य की प्रतिभा है और वह रजोगुण में अपने ब्रह्मचारी को महान, पवित्र बनाना चाहता है। सुचरित्र हो, सुविचारक हो, सु-गार्हपथ्य हो सु-अग्निवेत्ता हो। इस प्रकार की भावना उसके गर्भ में रहती है। मानव यह चाहता है कि विचारते रहने से वह विद्या की प्रतिनिधि क्रिया बन जाती हैं, वह एक क्रिया बन करके अन्त में उस अनुसन्धान में, उसे वह प्रभु की कृत्ति दृष्टिपात आती हैं, क्योंकि यह जो जितना जगत है यह सब अनुशासन में हैं सूर्य प्रातःकालीन उदय होता हैं, उदय हो करके शनै-शनै किरणों को लाता हैं पृथ्वी पर आच्छादित हो जाता है परन्तु वह सूर्य केवल एक अनुशासन में ही दृष्टिपात आने लगता है। प्रातःकाल में धीमा-धीमा प्रकाश होता है, शीतल होता है रात्रि के परमाणुओं को, उष्ण बनाने लगता हैं और जब मध्य में सूर्य आता हैं तो उसका जीवन तेजोमयी बन जाता है। तेजोमयी बन करके वह प्रकाश भी देता हैं उष्ण भी बनाता है, तेजस्वी बना हुआ है, परन्तु वही सायंकाल को धीमा बन करके रात्रि के परमाणु जागरूक हो जाते हैं और उस तेजोमयी परमाणुओं में रत्त हो जाते हैं परिणाम यह कि सांयकाल को वह सांत्वना में प्रवेश हो जाता है तो याचक विचारता है यह प्रभु का कैसा प्रिय अनुशासन है, सूर्य अनुशासन में हैं, पृथ्वी अपने भू मध्य में प्रतिक्रियाओं में रत्त हो रही है नाना प्रकार के परमाणुओं को ले रही है कहाँ-कहाँ से परमाणु ले करके, कहीं अग्नि से लेती हैं, तो कहीं चन्द्रमा से लेती है, तो कहीं सूर्य से लेती हें, प्राण वायु से ले लेती हैं और अवकाश अन्तरिक्ष से ले करके पृथ्वी अनुशासनमयी कहलाती हैं। तो अनुशासनवेत्ता यह विचारता है कि अरे, यह तो सर्वत्र जगत ही अनुशासन में हैं। माता अपने पति के समीप जब गृह स्वामिनी बन करके अपनी वार्त्ता प्रगट करती है तो उसके अनुशासन में एक विचित्रता आ जाती है, पुत्र के समीप जब अनुशासन में प्रवेश होती है तो वहाँ एक विचित्रता आ जाती है पिता के समीप जाती है तो वहाँ अनुशासन एक भिन्न बन जाता हैं। परन्तु भिन्न बन जाने से, अन्त में वह अनुशासन जब प्रतिक्रियाओं में, जब अन्तिम छोर पर पंहुचेगा तो प्रभु ही दृष्टिपात आने लगेगा।

इस प्रकार का जो यह ब्रह्मयाग है यही तो व्यष्टि से मानव को, समष्टि में ले जाता हैं नेत्रों की ज्योति हैं वह ज्योतिवान बन करके, ज्योति के समन्वय को विचारने लगता हैं और विचारता हुआ नाना देवताओं के जड़ देवताओं के, समीप चला जाता है। चैतन्य देवताओं के समीप चला जाता हैं जाता-जाता जब दूरी चला जाता है तो अन्तिम छोर पर जाकर मौन हो जाता है।

तो विचार-विनिमय क्या, जब यह ब्रह्मयागी बनेगा तो अज्ञान नही भासेगा, अज्ञान उस काल में भासता है जब यह प्रभु की सृष्टि को निहारता नही है जब यह प्रभु की महानता को अपने में धारण नही करता है जब, उसके चिन्तन में अपने को विशाल नही बनाता, तो यह नाना प्रकार का तीक्ष्ण क्रियाकलाप करता हुआ, मानव के जीवन

को, निकृष्टता में ले जाता हैं।

महाराजा अश्वपति के यहाँ हम (शृङ्गी ऋषि) अपने ब्रह्मचारियों को प्रातःकालीन शिक्षा देते, तो ब्रह्मचारी व्यष्टि और समष्टि की विवेचना विद्यालय में ही प्राप्त कर लेता है क्योंकि विद्यालय में आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों को याग करना चाहिए, जिसे ब्रह्मयाग कहते हैं। माता पुत्र को भी, बालिकाओं को भी, अपने में ब्रह्मयाग कराये है, जिससे अज्ञान न आये, क्योंकि अज्ञान का आ जाना ही रूढ़ि है अज्ञान का आ जाना ही मानव का मानव को भक्षण करने की प्रवृत्तियां का बन जाना है।

तो परिणाम क्या, मानव को प्रातःकालीन ब्रह्मयाग करते-करते मौन हो जाना चाहिए और जब यह मौन हो जाता है क्योंकि ब्रह्मयाग में परिणत होता हुआ उसमें अंग संग में भूमिका बनाता हुआ, इस मानव को, प्रकृति के क्षेत्र में ले जाता हैं और प्रकृति के क्षेत्र को ले जा करके वह ब्रह्म में प्रवेश करा देता है ब्रह्म में इसकी समाहितता हो जाती है और जब यह समाहितता हो जाती है तो यह ब्रह्मयाग कहलाता हैं।

ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? प्रातःकालीन विद्यमान हो करके, वेदों की ध्वनियों में ध्वनित हो रहा है, वह गान गा रहा हैं जटा पाठ में गान गाता हुआ, अपने को माला पाठ में ले जाता हैं माला पाठ में ले जा करके वह बाह्य जगत में ध्वनित हो करके, उन प्रवृत्तियों को, आन्तरिक जगत में ले जाता हैं आन्तरिक जगत में ध्वनियां होती हैं उनका नृत्त हो रहा है जैसे यह प्रकृति अपने में नृत्त कर रही हैं केवल उस ब्रह्म के सन्निधान मात्र से ही इसका नृत्त प्रारम्भ हो जाता है यह कैसा नृत्त है, उस नृत्त के लिए आज मानव यह विचारने लगे कि यह कैसा नृत्त है वह जो नृत्त हो रहा है जब योगेश्वर, जब साधक अपने में प्रवेश करके, आन्तरिक मस्तिष्क में ले जाता है आन्तरिक ब्रह्मरन्ध्र में ले जाता है तो वहाँ पिपाद झरता रहता है। अमृत की धाराओं का गमन हो रहा है वहाँ ब्रह्माण्ड की धाराओं का दिग्दर्शन किया जा रहा है। ब्रह्म का चिन्तन किया जा रहा है। वह ब्रह्म में समाधिष्ट हो करके ही लघु मस्तिष्क में प्रवेश करके अपने को महान बनाता हुआ वह प्रभु को ही अपने में दृष्टिपात करने लगता है तो उपासना करता हुआ वह ब्रह्मयाग में परिणत हो जाता हैं एक वेदमन्त्र को लेता हैं उसी वेदमन्त्र की विचित्र भूमिका बनाता हुआ, अन्तिम छोर से, वह मौन हो जाता है।

ब्रह्मयाग में वह ब्रह्म की उपासना करते हुए थे और उच्चारण कर रहे थे कि ब्रह्मन्! तू कितना महान है, तू तपोमयी है, जो हमें यह संसार दृष्टिपात आ रहा है यह तेरा उग्र तप है जो सूर्य की धारा बन करके हमें तपा रहा है यह तेरा उग्र तप है जो अग्नि बन करके हमें प्रकाश दे रहा है। ऊष्णा बना रहा है। तेरा उग्र तप है जो वायु के रूप में हमें प्राण दे रहा है। २४ ०२ १९८५

हमारे यहाँ सबसे प्रथम ब्रह्मयाग होता है। ब्रह्मयागी जो प्राणी है, वह प्रातःकालीन ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करता रहता है और ब्रह्म की महती में अपने को रत्त करा लेता है। गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो करके यह विचारता है कि मैं ब्रह्मलोक में चला जाऊ, मैं ब्रह्म की आभा में रत्त हो जाऊ क्योंकि ब्रह्म अपने में ब्रह्मवर्चासि कहलाता है। ब्रह्म का चिन्तन करना, ब्रह्म की सृष्टि को निहारना यह उसका एक मनोनीत कर्त्तव्य बन जाता है। एक विचार उसके समीप आता है कि मैं ब्रह्म के, एक एक परमाणुवाद के ऊपर, चिन्तन करना प्रारम्भ करूं, अपने को उसमें रत्त कराऊं। १८१०१९८५

हे प्रभु! मानव तेरी उपासना कर रहे हैं और तू हमारा उपास्य देव है। प्रातःकालीन ब्रह्मयज्ञ कर रहे हैं। ब्रह्मयाग का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म की प्रतिभा का वर्णन करना। नाना प्रकार के लोक-लोकांतर तेरे गर्भस्थल में हैं। एक मण्डल दूसरे मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। एक दूसरा लोक एक दूसरे लोक को आभायित कर रहा है। उस मेरे प्यारे प्रभु के सुन्दर, प्रातःकालीन याग को हम दृष्टिपात कर रहे हैं। २९१११९७६

ब्रह्म याग मीमांसा

ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? ब्रह्म का चिन्तन करना है, ब्रह्म का अध्ययन करना है। वह ब्रह्म कैसा है? वह चतुष्पाद वाला है षोडश-कलाओं वाला है, वह जो ब्रह्म है, उस ब्रह्म का चिन्तन करना मानव का एक कर्त्तव्य माना जाता है। आत्मा का चिन्तन करना, आत्मवत् बनना यह मानव का कर्त्तव्य है। आत्मा तो चैतन्य है।

ब्रह्मयाग का अभिप्राय है कि प्रातःकालीन अपने आसनों पर विद्यमान होकर के ब्रह्म का चिन्तन करना, उसके गुणों का बखान करना, हे प्रभु! तुम कैसे हो? तुम न्यायकारी हो, तुम दयालु हो, तुम कृपालु हो, तुम संसार को धारण कर रहे हो। जैसे माता अपने गर्भस्थल में शिशु को धारण कर लेती है जैसे यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों को धारण करने वाली है, ऐसे ही प्रभु! आप भी इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को धारण कर रहे हैं। जब मैं वेद का मन्त्र कहता हूँ तो मुझे आप ही आप दृष्टिपात आते हो। जब मैं प्राची में जाता हूँ तो मुझे तुम अग्नि के रूप में दृष्टिपात आते हो। जब मैं दक्षिण दिशा में जाता हूँ तो वहाँ तुम मुझे इन्द्र के रूप में दृष्टिपात आते हो और जब मैं पश्चिम दिशा में जाता हूँ तो वहाँ अन्नादवीर्यत्व के रूप में दृष्टिपात आने लगते हो। जब मैं उदीची में जाता हूँ तुम सोम बन करके हमें अमृत प्रदान कर रहे हो। जब मैं ध्रुवा में जाता हूँ तो वहाँ तुम विष्णु बन करके पालन कर रहे हो और जब मैं ऊर्ध्वा में जाता हूँ तो आचार्य बन करके हमारे जीवन का उत्थान कर रहे हो।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कजली वनों में विराजमान होते थे तो वह ब्रह्मयाग करते थे मानव ब्रह्मयाग में प्रातः काल में, ब्रह्म की प्रतिभा के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करते थे नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों को निहारने लगते थे और यह विचारने लगते थे कि-प्रभु! तू कितना विचित्र है तेरी कैसी विचित्रता है, प्रभु! यह कैसा अनुपम जगत है कैसे लोक-लोकान्तर हैं, प्रभु! तेरे राष्ट्र में एक-दूसरा मण्डल एक दूसरे मण्डल से मिलान न करता हुआ कैसा चक्र चल रहा है ऋत और सत में सर्वत्र जगत गति कर रहा है अपने-अपने आँगन में गति कर रहा है जैसे माला है और माला में मनको में धागा है। एक ही धागे में मनके पिरोये जाते हैं अब जब प्रत्येक मनके धागे में पिराये जाते हैं तो वह माला बन जाती है इसी प्रकार यह लोक-लोकान्तरों की माला है, यह उस ब्रह्म की माला है जिस माला को धारण करने वाला ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है

हम ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करें। ब्रह्म क्या है ब्रह्म जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में इस माला को गुथा है, माला का सृजन किया है उस माला को धारण करने वाला यह आत्मा है वह इस प्रकृति के नाना तत्वों का जानता है, भौतिक और आध्यात्मिकवादी दोनों में गति करना चाहता है। ०४ ११ १९८२

४ ब्रह्मयाग का उदबोधन

प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन करना ओर ब्रह्म की कृतिका को विचार-विनिमय में लाने का नाम ब्रह्मयाग कहलाता हैं। ऋषि प्रातःकालीन जल से प्रोक्षण करता हुआ कर्त्तव्यवादी बनता हुआ, मार्जन करके सन्ध्या की गोद में चला गया। २३ ०३ १९८६

हमें प्रातःकालीन ब्रह्मयाग करना चाहिए ०८ ०८ १९९०

हे मानव! तू ब्रह्मयागी बन। क्योंकि ब्रह्म का चिन्तन करना तेरा कर्तव्य है। वह विज्ञानमयी स्वरूप रहने वाला है, प्रत्येक विज्ञानवेत्ता उस परमपिता परमात्मा की आराधना करता हुआ और उसके ज्ञान, विज्ञान को जानने के लिए तत्पर रहता है।०८०३१९८७

हे मानव! तू प्रातःकाल की पवित्र बेला में अपने आसन को त्याग। प्रातःकाल की पवित्र बेला में आसन को त्यागने के पश्चात मानव अपनी भूमिका बनाता हैं शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके ब्रह्मयाग करे।

हे मानव! तू प्रातःकालीन अपनी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके, तू प्रभु के समीप जाने का प्रयास कर तू ब्रह्मयाग कर, गृह आश्रम में पति पत्नी हैं, तो उन्हें ब्रह्मयाग में रत्त हो जाना चाहिए। प्रातःकाल में ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों को ब्रह्मयाग करना चाहिए, वह ब्रह्मयागी बन जायें। कहीं भी किसी भी स्थली पर कोई भी मानव विद्यमान है तो वह ब्रह्मयागी बन जाये क्योंकि प्रातःकाल में यह जो जितना प्राणीमात्र हैं यह प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, गान गाता हुआ ध्वनित हो रहा है जो प्राणी हैं प्राणो से ध्वनित हो रहा हैं जो जीवात्मा प्राणों के समूह ले करके रत्त रहता है वह गान गा रहा हैं। तो प्रातःकालीन जितने भी परमात्मा के राष्ट्र में, प्रभु के राष्ट्र में जितना भी प्राणी मात्र हैं वह सब एक गान गा रहा है और वह गान गाता हुआ अपने में प्रसन्न हो रहा है इसी प्रकार प्रातःकालीन तू ब्रह्मयागी बन और तू नाना प्रकार के अज्ञान में प्रवेश न करते हुए जो मस्तिष्क में एक ध्वनि हो रही हैं और स्वरों का गान हो रहा हैं प्रत्येक वेदमन्त्रों में ध्वनि होती हुई प्रतीत होती हैं, वह ध्वनित होता हुआ दृष्टिपात आता है। जब वेद का याचक, वेद के गर्भ में, वेद की भूमिका बनाने लगता है, जब उसका गान गाता हैं तो प्रत्येक वेदमन्त्र उसके समीप एक ध्वनि बन करके रहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र अपनी आभा में रत्त और विज्ञान की धाराओं की उपलब्धि करने वाला है, ब्रह्मयाग की उपलब्धि करने वाला है। क्योंकि जैसे एक वेदमन्त्र हैं। परमात्मा का रचाया हुआ ज्ञान और विज्ञान उसमें निहित रहता है। परन्तु परमात्मा का जो विशाल विज्ञान है अथवा ज्ञान है उसकी रचना में रत्त है उसके लिए मानव सदैव विचारता है। ०१ ०८ १९८५

सबसे प्रथम शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके मानव को ब्रह्मयाग करना चाहिए प्रातःकाल की पवित्र बेला में ब्रह्मयाग होना चाहिए जब पति पत्नी गृह में ब्रह्मयाग को करते हैं तो उनका गृह स्वर्ग, महान और पवित्र बन जाता है उनके विचार, ब्रह्म के गुथे हुए विचार उस वायुमण्डल में प्रवेश हो जाते हैं। २८ ०१ १९८८

हे मानव! तू मेरे उस देव की जिसने इस विद्या को निर्मित्त किया है। नाना प्रकार की विद्याएँ, नाना प्रकार का निर्माण मेरे प्यारे प्रभु ने किया है। नाना प्रकार की सृष्टि का सृजन करने वाला वह वेद है। जिस उपास्य की हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। वह उपास्य देव माना गया है। वेद का ऋषि कहता है। हे मानव! तू प्रातःकाल याग करने वाला बन। तू ब्रह्मयागी बन, ब्रह्म का चिन्तन करने वाला बन। माता गायत्री की गोद में जाने का प्रयास कर। क्योंकि वह जो माता है वह अपने में तुझे धारण करके तुझे धन्य कर देगी। हे मानव! तू प्रातःकालीन ब्रह्मयागी बन। २९ ११ १९७६

हे मानव! तू प्रातःकालीन अपने आसन को त्याग करके ब्रह्मयागी बन। ०६ ०३ १९८७

मुनि वशिष्ठ ने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम अपने में एकत्रित हो करके, अपने में अनुष्ठान करते हुए, अपने में मानवीयता का दिग्दर्शन करते हुए चरी और ब्रह्म दोनों का दर्शन करो और दोनों का समन्वय करके एक सूत्र में सूत्रित हो करके तुम उसी में रत्त हो जाओ। तो यह ब्रह्मचारियों को प्रातःकालीन अपना उपदेश, याग के समय देते, याग का अभिप्राय यह हे मानव! तू अपनी आत्मा को और अपने शुभ संस्कारों को जागरूक करता हुआ, तू आत्मा को जानने वाला बन। आत्मवेत्ता बन करके तेरी प्रतिभा महानता में गति करे। १२ ११ १९८३

५ ब्रह्मयाग पर ऋषियो की चर्चाएं

एक समय अंगिरस ऋषि के मन में यह जिज्ञासा जागरूक हुई कि मैं ब्रह्मयागी बनूं। तो वह ब्रह्मयाग कैसे करते थे? अंगिरस ऋषि महाराज जब रात्रि छा गई तो अपनी आत्मा के प्रकाश से, उस ब्रह्म का दर्शन करते, ब्रह्म का जब दर्शन होता तो वह अपने में यह घोषणा करते कि मुझे ब्रह्म का दर्शन हो रहा है, अपने हृदय में ही घोषणा हो रही है बाह्य जगत में घोषणा की आवश्यकता नही होती, जब मानव में शुद्धिकरण हो जाता है आत्म बल बलवती हो जाता है, तो उस समय आत्मा की क्रिया, मानव के जीवन, क्रियाकलाप में प्रायः आत्मीयता की सुगन्धि आनी प्रारम्भ हो जाती है। ०५ १२ १९८६

प्रातःकालीन वह ब्रह्मयाग करते ब्रह्म का चिन्तन करना ब्रह्म का मनन करना है प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके, ब्रह्म का चिन्तन करते रहते कि ब्रह्म क्या है? नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में अथवा ज्ञान और विज्ञान में उस महान ब्रह्म की विवेचना करना उनका एक मुख्य कर्तव्य कहलाया जाता है। ०६ ०७ १९८७

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता थे। महाराजा अष्टावक्र, महाराजा अश्वल, महाराज अर्धभाग, महाराजा ऋद्ध और महर्षि वैशम्पायन इत्यादि नाना ऋषि राजा जनक के यहां आ करके ब्रह्मयाग करते रहे हैं।

महात्मा अश्वल ने कहा- भगवन्! इस यज्ञमान को मृत्यु से उल्लांघना है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि-बोले कि व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करना ही अन्धकार से प्रकाश में जाना है। ये व्यष्टि और समष्टि में तुम्हें प्रवेश होना है। व्यष्टि को त्यागना है और समष्टि में अपने को परिणत कर देना है। तो वही ब्रह्म का ज्ञान होना है। जैसे हमारी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं ये ज्ञानेन्द्रियाँ व्यष्टि में रहती है तो इनका नाम रूप रहता है। जैसे व्यष्टि में नेत्र बने रहते हैं। यदि व्यष्टि में जाओगे तो ये नेत्र हमारा अग्नि का स्वरूप धारण करेंगे जैसे श्रोत्र हैं ये जब तक व्यष्टि में रहते हैं तब तक श्रोत्र कहलाते हैं और जब ये समष्टि में जाते हैं तो ये ही श्रोत्र दिशाएँ बन जाते हे। जैसे हमारे घ्राण इन्द्रियाँ है, जब तक ये व्यष्टि में है तब तक ये घ्राण हैं और जब ये समष्टि में चली जाती है तो ये ही पृथ्वी के स्वरूप को धारण कर लेती है जैसे वाणी है। वाणी समष्टि में, वाणी है और व्यष्टि में ये ही अग्नि बन जाती है। जैसे हमारी ये त्वचा है। समष्टि में प्रेम है तो व्यष्टि में ये ही चन्द्रमा बन जाती है। व्यष्टि से समष्टि में पहुँचाना है। व्यष्टि से समष्टि में पंहुचाना ही ब्रह्मज्ञान का द्योतक है, वही ब्रह्मज्ञान को छूने लगता है। १३ १० १९८१

एक समय रेंगणी भारद्वाज अपने यहां याग के रूप में परिणत हुए। सबसे प्रथम प्रातःकालीन ब्रह्मयाग होता रहता था। ब्रह्मयाग का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना और ब्रह्म के ज्ञान और विज्ञान के ऊपर अपने में अनुसंधान और विचार-विनिमय करते रहना और विचार यह कि वह प्रभु कैसा अनूठा है, कैसा विचित्र है? वह प्रातःकाल में जब सूर्य उदय होता है, तो उदय होने से पूर्व भी, प्रतिभा का दर्शन होता है। उस प्रतिभा में सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं वे उर्ज्वा ले करके, प्रकाश ले करके रात्रि को अपने गर्भ में धारण करके प्रकाश का द्योतक बन करके आ जाती है। वह प्रकाश प्रभु की महानता और प्रभु का विज्ञान है। तो नाना प्रकार के कई तारा मण्डलों की माला बनी रहती है, कहीं, सूर्यों की माला बनी रहती है तो इस प्रकार अपने में विचार-विनिमय करना है। यह ब्रह्मयाग कहलाता है। जहाँ ब्रह्म का चिन्तन करना, मनन करना, ब्रह्म की प्रतिभा को, अपने में धारण करना, अपने में, अपनेपन का दर्शन करना है। २७ ०१ १९८८

पूज्यपाद गुरुदेव ने ब्रह्मयागों की बड़ी विचित्र चर्चाएं अथवा बड़ी महान से महान उड़ाने उड़ी हैं, उन उड़ानों में पूज्यपाद गुरुओं ने और भी नाना ऋषियों ने यह निर्णय दिया है कि ब्रह्मयाग होना चाहिए जिस परमपिता

परमात्मा ने हमारा निर्माण किया हैं जिस परमपिता परमात्मा ने नाना प्रकार की सृष्टि का सृजन किया हैं जिस परमपिता परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की हैं और रचना करके उनको जो क्रिया दे रहा हैं, उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में प्रातःकालीन चिन्तन करने वाले बनें। चाहे सामान्य प्राणी हो, चाहे युवक हो, चाहे पत्नी और पति हों, किसी भी रूप में मानव विद्यमान हो उस ब्रह्म का चिन्तन अवश्य करने वाले बनें, जो माता पिता सुयोग्य होते हैं जिन माता पिताओं के हृदय में यह वेदना होती है कि मैं सुयोग्य सन्तान को जन्म देना चाहती हूँ तो माता पिता को तपस्या करनी होगी, क्योंकि बिना तपस्या के सन्तान सुयोग्य उत्पन्न नही हुआ करती। ०६ ०३ १९८७

मार्कण्डेय ऋषि प्रातःकालीन ब्रह्मयाग करते रहते थे। कि मेरे जो नेत्र हैं, यह नेत्र किसके प्रकाश से दृष्टिपात करते हैं? नेत्रों के पिछले भाग में एक पीला पटल होता है। पीले पटल के पिछले भाग में, एक सुकैता नाम की नाड़ी होती है, उस नाड़ी का सम्बन्ध हृदय से होता है। हृदय से जो गति होती है वही चेतन मानव के नेत्रों में आती है तो हे मानव! तू उसका चिन्तन कर जिसके प्रकाश से यह तुम्हारे नेत्र प्रकाशित होते हैं। वह किससे प्रकाशित होते हैं, वह कौन है? वह चैतन्य आत्मा है। वह चैतन्य प्रभु है। उसी को तुम जानो, जिसका आयतन यह आत्मा बना हुआ है।

मार्कण्डेय ऋषि विचार कर रहे है घ्राण नाना प्रकार की सुगन्ध लेने वाली है, दुर्गन्ध को लेने वाली है। घ्राण के पिछले विभाग में एक यन्त्र है जिसे स्वादिष्ट यन्त्र कहते हैं। उसी यन्त्र के पिछले भाग में नाड़ियों का केंद्र है। उसमें प्राणों का केंद्र है। प्राणों का सम्बन्ध मानव के अन्तर्हृदय से होता है। चैतन्य से होता है। यह घ्राण जिसकी शक्ति से घ्राणित हो रही है, मन्द सुगन्ध को लेती है, तू उस शक्ति को जानने का प्रयास कर। वह चेतन है, वही आयतन है। उसी को जानने का प्रयास कर।

प्रत्येक इन्द्रिय में जो क्रिया हो रही है, मानव वाणी से उच्चारण करता है और वाक्य की जब रचना होती है तो कण्ठ के द्वारा होती है। रसना, जब तालू से सम्बद्ध होती है तो उसका समन्वय होता है तो वह अपनी आभा में रमण करता रहता है। वह जो समन्वय होता है वाक्य की रचना हो जाती है। अ का सबसे प्रथम उद्घोष होता है। क्योंकि अ की रचना सबसे प्रथम होती है। उसके पश्चात उ की रचना होती है। उसके पश्चात म् की रचना होती है, और तीनों में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड समाहित हो रहा है। अ में तो प्रभु है और उ में जीवात्मा है और म् में जितना यह प्रकृति का क्षेत्र है, यह रमण कर रहा है। मैं उन शब्दों की व्याख्या करने नहीं आया हूँ।

इससे आगे चल करके नाना शब्दों की रचना होती है, लेख इत्यादि की रचना होती है। परन्तु जितने भी ये शब्द हैं, इन्हीं शब्दों में छन्द विद्यमान हैं। इन्हीं शब्दों में व्याकरण विद्यमान है। इन्हीं शब्दों में चारों वेद विद्यमान हैं। नाना ऋचा इन्हीं शब्दों की गाथा गा रही है।

मार्कण्डेय ऋषि यह कह रहे है कि हे मानव! तू ब्रह्मयागी बन। यह वाणी जिसका कण्ठ से निर्माण होता है। शब्दों की रचना होती है। कण्ठ के निचले भाग में क्या है? जहाँ से ये तरंगें चलती हैं वह हृदय है। हृदय में क्या है? हृदय के मध्य में जीवात्मा है, चेतना है। उसी चेतना को जानने का तू प्रयास कर। वही आयतन है, वही ब्रह्म है, तू ब्रह्म की उपासना कर। जिससे यह संसार चेतनित हो रहा है। और ब्रह्मयाग क्या है? परमपिता परमात्मा ने जो मानव शरीर की रचना की है, यह एक ब्रह्मयाग है। यहाँ इसमें ब्रह्मयाग हो रहा है उस ब्रह्मयाग में जो तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, उन तरंगों को जानने का प्रयास कर। यह ब्रह्मयाग कहलाता है। संसार की जो रचना हुई है, उस रचना के ऊपर चिन्तन करता हुआ चल, महान कर्म करता हुआ चल।

तो प्रातःकालीन मार्कण्डेय ऋषि महाराज विचार रहे थे सृष्टि के प्रारम्भ में यह संसार रूपी यज्ञ का निर्माण किया था और यह सूक्ष्म-सी मानव पिण्ड की रचना की, यह भी ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड को

जानने के लिए ऋषि-मुनि परम्परा से प्रयास करते रहे हैं। उस अनुसन्धान शैली में, अनुसन्धान की अपनी आभा है। वह पूर्णता को प्राप्त होते रहे हैं।

मार्कण्डेय ऋषि महाराज आदि ऋषि कहलाए जाते हैं, वे महान ऋषि थे। वेदों का अध्ययन करने वाला पूज्यपाद ऋषियों का जो समूह उनके द्वारा आता, उनके मध्य में विराजमान हो करके, वे याग करते रहते थे। प्रातःकालीन याग होता रहता। याग उसे कहते हैं जिसकी प्रक्रिया को जान करके मानव उसमें हूत करता है तो उसको याग कहा जाता है।

परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए याग को जानने का प्रयास कर जिसके कारण से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है, इस पृथ्वी की रचना हुई है। पृथ्वी से ग्रीवा की रचना हुई है और चन्द्रमा से उपस्थ की रचना हुई है। यह तो विज्ञान है यह तो महान एक कर्म है। विशाल व्यापकवाद में भ्रमण करने वाले ये शब्द हैं।

हम परमपिता की उपासना करते हुए, ब्रह्मयाग को विचारते हुए जैसा याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है। ऐसा ही मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है। ऐसा ही सोमकेतु ऋषि ने कहा है। ऐसा ही आदि ब्रह्मा ने कहा है, अंगिरा ऋषि ने कहा है। ऐसा करते हुए मानव अपनी-अपनी गतियों में रमण करता रहा है और विशेष ऋषियों का जन्म हो करके नाना प्रकार की विद्या का प्रादुर्भाव होता है। इस वाणी को शब्दों की रचना ही नहीं माना, इसे अग्नि काण्ड भी माना है। अग्नि की प्रतिभा भी माना है। यह तो विज्ञान है।

इसी प्रकार प्रत्येक मानव की जो इन्द्रिय है वह उस आयतन ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है, आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है।

पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि जितना भी मानव संसार में विचारक बनना चाहता है तो वह प्रातःकाल एक याग करता है। उस याग का नाम हमारे यहाँ ब्रह्मयाग कहा जाता है, ब्रह्म का चिन्तन किया जाता है। ऊषा काल में, ऊषा देवी अपनी लालिमा ले करके आती है। संसार में प्रकाश को लेकर आती है। उस समय प्रत्येक मानव ब्रह्म का चिन्तन करता है और जैसे रात्रि और दिवस दोनों का मिलान होता है उस काल में अपने मन, जहाँ ऊषा काल आता है वहाँ जहाँ अन्धकार और प्रकाश का मिलान होता है ऐसा जो काल है उसको हमारे यहाँ सन्ध्या का काल कहते हैं। उस सन्ध्या का काल क्यों कहते हैं! क्योंकि उसमें प्रकाश और अन्धकार दोनों का मिलान होता है। प्रातःकाल को भी और सायंकाल को भी, विचारक जो ब्रह्मवेत्ता हैं अथवा जो ब्रह्म का चिन्तन करने वाला है वह ब्रह्म का चिन्तन करने के लिए तत्पर होता है और इसी प्रातःकाल को वह विचारता है और वह चिन्तन करता हुआ लोक-लोकान्तर में वह गम्भीर, एक अगाध समुद्र में चला जाता है इतनी अगाध आभाओं में रमण करने लगता है क्योंकि ब्रह्म ही एक चैतन्य है। ब्रह्म की जो चेतनता है, ब्रह्म का चैतन्यमयी स्वरूप माना गया है प्रातःकाल उसे ब्रह्मयाग कहते हैं अथवा ब्रह्म का चिन्तन कहते हैं। वह कहता है हे प्रभु! मैं आप को समर्पित हो गया हूँ। उस समर्पणता के आँगन में हमें धारण कराइये।

प्रत्येक मानव को ब्रह्म का चिन्तन करना है, ब्रह्म में ही रमण करना है। उसे ब्रह्मयाग कहते हैं।

ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? जो ब्रह्म का जिज्ञासु है।

ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? जो अपने को बनाना चाहता है।

ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? जो स्वर्ग में जाना चाहता है। आनन्द को प्राप्त करना चाहता है।

ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? ब्रह्मा करता है।

ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? ब्रह्मचारी करता है।

ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? जो समाधि लगाने वाले महापुरुष हो, जो माता-पिता यह चाहते हैं कि

हमारा गृह आनन्दमयी हो जाए। हमारे गृह में स्वर्ग भी हो, आनन्द भी हो, प्रकाश भी हो।

तो प्रत्येक माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने गृह में ब्रह्म का चिन्तन करने वाले हों। ब्रह्म का मनन करने वाले हो।

एक ऋषि थे जिनका नाम सन्तोषी ऋषि महाराज था। सन्तोषी ऋषि महाराज, महाराजा अश्वपति के पुरोहित थे। जब वह प्रातःकाल पति-पत्नी दोनों ब्रह्म का चिन्तन करते थे तो उनकी समाधि लग जाती थी। निर्विकल्प समाधि में अभ्यस्त हो जाते। उनके यहाँ कुछ ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे, कुछ ब्रह्मचारिणियां थीं तो ब्रह्मचारी निर्विकल्प समाधि में मग्न करते हुए दृष्टिपात करते तो ब्रह्मचारी विद्यालय में जब उसी प्रकार का चिन्तन करते रहते तो विद्यालय स्वर्ग बन जाते। विद्यालयों में महत्ता का सदैव प्रदर्शन होता रहता। महानता में रहते हुए विभोर हो जाते और समाधि में जा करके ब्रह्म की आभा में रमण करते रहते। महर्षि सन्तोषी मुनि महाराज अश्वपति के पुरोहित भी थे, और विद्यालय में आचार्य भी थे। विद्यालय में ब्रह्मचारियों को अध्ययन भी कराते रहते। ब्रह्म के चिन्तन में अपने को महान बनाते हुए, ऊर्ध्वा बनाते हुए संसार की आभाओं में रमण करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

ब्रह्म का चिन्तन करने वाले, पति-पत्नी प्रातःकालीन, मध्यरात्रि होती तो प्रभु के आँगन में जाने के लिए उनका आत्म विभोर होना स्वाभाविक था। क्योंकि वह कहा करते थे हे प्रभु! यह जो तेरा आनन्दमयी जगत है, इसको हम कैसे जानें? इसको कैसे जान सकते हैं? आपकी जो अनन्त सृष्टि है, जो अनन्त ब्रह्माण्ड है उसको जानने में प्रभु! मैं सदैव असमर्थ रहता हूँ। हे भगवन्! आप तो महान हैं। आप तो विचित्र कहलाते हैं। यह जो माता-पिता हैं, ब्रह्म का चिन्तन करते रहते हैं वहाँ रहने वाले बाल्य, बालिकाएं, वह जो श्रवण करते हैं, तो उनका आश्रम, उनका गृह, चाहे वह गृह-आश्रम में प्रवेश होने वाले हों, चाहे वह विद्यालय में हों। चाहे वह राजा के यहाँ पुरोहित क्यों न हों, परन्तु वह जहाँ भी जाते हैं वहाँ स्वर्ग की कल्पना करते हैं। आनन्द की पुकार करते हैं।

तो आनन्द मानव के हृदय से सम्बन्धित है। मानव का हृदय ही उसका आनन्द है। इस आनन्द को पान करना, मानव का कर्त्तव्य कहलाया गया है। एक आनन्द को पान करना ही मन और प्राण दोनों को एक आभा में ले जाना है। परन्तु प्रातःकालीन जब वह ब्रह्म का चिन्तन करते, तो उसे ब्रह्मयाग कहते हैं।

प्रभु के विभोर में जो मानव जागरूक रहता है वह याग कर्म करता है। ब्रह्म यागी कौन है? ब्रह्म यागी उसे कहते हैं जो याग करता है जो ब्रह्म का चिन्तन करता है। ब्रह्म का मनन करता है।

एक समय महाराजा अश्वपति के मस्तिष्क में एक वाक्य आया कि मुझे अपने राष्ट्र को स्वर्गमयी, आनन्दमयी बनाने के लिए एक याग करना है। उन्होंने ऋषि-मुनियों की एक सभा एकत्रित की और उन ऋषियों में एक ऋषि का नाम था महर्षि कुकरोटक ऋषि महाराज।

तो कुकरोटक ऋषि महाराज ने कहा राजन्! हमें किस लिए एकत्रित किया। उन्होंने कहा कि मैं अपने राष्ट्र में याग करना चाहता हूँ क्योंकि मेरा जीवन ही याग है। मैंने अपने में यह विचार लिया है कि मेरे जीवन में याग ही होते रहें। यदि वास्तव में मैं याग को करना चाहूँगा तो मेरा याग इतना महान हो सकता है कि मैं संसार का याज्ञिक बन करके प्रभु को समर्पित कर सकता हूँ। जब उन्होंने यह कहा तो महर्षि विभाण्डक और महर्षि कुकरोटक एक स्वर में बोले। हे अश्वपति! आप याग तो करना चाहते हैं, याग की आपको कल्पना है, आप ब्रह्मयाग भी जानते हैं अथवा नहीं? उन्होंने कहा-प्रभु! ब्रह्मयाग तो मैं कुछ जानता हूँ कुछ नहीं जानता। ऋषियों ने कहा कितना जानते हो? उन्होंने कहा मैं इतना जानता हूँ कि प्रातःकाल, सायंकाल को मैं जब भी जागरूक होता हूँ। तो प्रभु में ध्यानावस्थित हो जाता हूँ। प्रभु की महिमा पर विचार विनिमय करने लगता हूँ और प्रभु का विचार

विनिमय करने से मेरा याग, मुझे को आनन्दित कर देता है। मैं केवल इतना याग करना जानता हूँ।

परन्तु ऋषि विभाण्डक कहते हैं। हे राजन्! तुम वास्तव में याग के मार्ग को जानना चाहते हो तो तुम्हारा यह जो ब्रह्मयाग है जिसमें मानव की एक एक इन्द्रिय समर्पित होती है। प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानना ही तुम्हारा याग कहलाता है। क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है जैसे, रूप, रस, गन्ध इन विषयों में सर्वत्र मानव की आभा निहित रहती है और यही ब्रह्मयागी बनने के लिए साकल्य कहलाता है। उन्होंने कहा-प्रभु कैसे? उन्होंने कहा जैसे नेत्र हैं, जैसे घ्राण इन्द्रियां हैं यह एक-एक विषयों में ब्रह्म की गाथा गा रही हैं। सूर्य और चन्द्र हैं यह भी गाथा गा रहे हैं। ब्रह्म की गाथा गाते हुए, विषयों को जानना, महान प्रतिभाओं को जानना, तेजोमयी का इनमें रहस्य भरा हुआ है। साकल्य को जानना उनको जान करके अग्न्याध्यान करना है। अग्न्याध्यान करके जो उसमें आहुति देता है, स्वाहाः कहता है वह ब्रह्मयाग कर रहा है। वह देवयाग नहीं, वह ब्रह्मयाग कर रहा है। क्योंकि ब्रह्मयाग मानव अपनी इन्द्रियों से करता है वह इन्द्रियों में जो साकल्य है। इन्द्रियों का साकल्य क्या है? नेत्रों का साकल्य रूप है श्रोत्रों का शब्द है। त्वचा का वायु है इसी प्रकार अग्नि इत्यादि हैं। इस सर्वत्रता को जानना ब्रह्माण्ड का साकल्य कहलाता है। ऋषि-मुनि इस साकल्य को एकत्रित करके ब्रह्मयाग करते हैं; ब्रह्माहुति देते हैं। ब्रह्म में आहुति क्या? प्रत्येक इन्द्रियों को ब्रह्म में, आत्मतत्व में समर्पित करके, ब्रह्म की आभा में ले जाना ही ब्रह्मयाग कहलाता है।

तो हमें ब्रह्मयाग करना है। हम ब्रह्म का चिन्तन करने वाले बनें। ब्रह्म का चिन्तन करने वाले स्वर्ग में जाते हैं। ब्रह्म-लोक में जाते हैं। वह इस ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जानते रहते हैं। सबसे प्रथम हमारे यहाँ ब्रह्म का चिन्तन हो। ब्रह्म के चिन्तन के साथ ही हमारा आत्म-चिन्तन भी प्रारम्भ होता है। परन्तु आत्म-चिन्तन और ब्रह्म चिन्तन दोनों एक ही सूत्र में पिरोने से ब्रह्मयाग बन जाता है। ब्रह्मयाग का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। वह ब्रह्मयाग कैसा है? ब्रह्मयागी कैसे बनता है? वह प्रातः काल प्रभु की सृष्टि को निहार रहा है। वह प्रभु को एक-एक, कण-कण में दृष्टिपात कर रहा है और करते-करते उसी में वो रत्त हो जाता है। तो वो मेरा देव कैसा अनुपम है कैसी महानता वाला है, कैसा विचित्र है, कैसा औजस कहलाता है। जिसके ऊपर परम्परागतों से अनुकरण, अनुसंधान करता रहा है। विचारता रहा है कि प्रभु तो एक अनुपम है। हम कहाँ जाएँ? उसके पश्चात भी मानव अपने अज्ञानता के कारण इस प्रभु की सृष्टि में, अपने में दूषित परमाणुओं का प्रसारण करता रहता है। जिससे उसमें एक अकृति उत्पन्न हो जाती है। जिससे मानव क्या, वायुमण्डल क्या, प्रभु की सृष्टि में दूषितपन आ जाता है। तो प्रभु! मैं तो यह कहता हूँ, कि तू अपनी कृपा, आनन्द को बरसा। हमें आनन्द की वृष्टि करा करके तृप्त कर्मों से पार करा। हे प्रभु! हम अन्धकार में नहीं रहना चाहते। हम प्रकाश में रत्त रहना चाहते हैं। प्रत्येक मानव प्रकाश को चाहता है। १३ ०३ १९७८

मानव के द्वारा पांच प्रकार के ऋण होते हैं। सबसे प्रथम ब्रह्म का ऋण होता है। वह जो ब्रह्म है, जिस ब्रह्म ने इस महान अनुपम जगत् को रचा है। जो ऋषि-मुनि अनुसन्धान करने वाले, समाधि में प्रभु को दृष्टिपात करने वाले नेति-नेति का प्रतिपादन करते हैं। नेति-नेति ही उच्चारण करते हैं वह प्रभु के ज्ञान और विज्ञान में विद्यमान होकर के अपनी आभा में सदैव परिणत रहते हैं। प्रभु के ऋण से उऋण जो होना चाहता है जिस प्रभु का धन्यवाद प्रत्येक प्राणी को करना चाहिए, श्वासों पर श्वास आ रहा है। कोई मानव नहीं जानता कि यह श्वासों की गति कैसे चल रही है? कोई मानव नहीं जानता एक श्वास में कितना परमाणु जाता है? यह परमाणु द्यौ लोक में जाता है। अन्तरिक्ष लोक में जाता है। नाना भू-लोक में प्रवेश करता है। यही तरंगें मानव को आवागमन के क्षेत्र में ले जाती हैं।

इनको कोई नहीं जानता, हम प्रभु का धन्यवाद करते चले जाएं जिस प्रभु ने इस मानव शरीर का निर्माण

किया है। हमें प्रातःकाल, सायंकाल प्रभु के सम्मुख विद्यमान होना चाहिए। हे प्रभु! मैं आपके समर्पित हूँ। हे प्रभु! मैं आपका एक पुत्र हूँ। मैं आपका अमृतमयी पुत्र हूँ। प्रभु! मुझे इस संसार में इस जगत को विचारने के लिए, मेरे हृदय में सदबुद्धि भरण कर। मेरे में अनुपम बुद्धि आ जाए। मैं ऐसा चाहता रहता हूं। यह प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिकाल, कोई भी काल हो, हमें प्रभु का धन्यवाद देना चाहिए।

इससे वह मानव, वह बालक अमृत पुत्र बन जाता है। जैसे माता का बालक, माता का पुत्र, माता की अनुपम सेवा करता हुआ आज्ञा का पालन करता है, माता की आभा में रमण करता है तो वह माता आलिंगन करती हुई, उससे स्नेह करती है। उसको अपना अमृतमयी पुत्र बनाती हुई अपने कर्त्तव्य का पालन करती चली जाती है। हमें इसी प्रकार प्रभु की आज्ञा का पालन करना है। उसका जो विधान है, उसका जो निर्माण किया हुआ अमूल्य जगत् है उसी के ऊपर हमें बारम्बार विचार-विनिमय करना, चिन्तन करना उसमें लिप्त रहना, क्योंकि यह संसार, जितना भी इस ब्रह्माण्ड में प्राणी मात्र है वह सब उस प्रभु का अमृतमयी पुत्र कहलाता है। अमृतमयी जगत कहलाता है। इसीलिए प्रभु की आज्ञा का पालन करना ऋण से उऋण होना है। इसके पश्चात जहाँ ईश्वर का ऋण है, प्रभु का ऋण है, जहाँ परमपिता परमात्मा का ऋण है उससे उऋण होकर के जिसको हम देवताओं का ऋण कहते हैं ब्रह्मऋण कहते हैं। १६०३१९७८

ब्रह्म को निहारते-निहारते वह ब्रह्मयाग करते हैं, ब्रह्मयज्ञ करते-करते अपने को ब्रह्म में, और ब्रह्म को अपने में दृष्टिपात करने लगते हैं कि ब्रह्म तो हम में विद्यमान हैं और हम ब्रह्म में विद्यमान हैं या हम माता वसुन्धरा की गोद में हैं वसुन्धरा के द्वारा वसुन्धरा की आभा में हम निहित हो रहे हैं। तो उस समय उसका ब्रह्मयज्ञ भी सिद्ध हो जाता है और एक-दूसरे विचारों में भी संगतिकरण हो रहा है।

महर्षि विश्वश्रवा ने कहा कि प्रभु! हम नाना प्रकार के याग करते हैं ब्रह्मयज्ञ करते हैं देवयाग करते हैं।

ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में यह आशङ्का बनी रहती है कि ब्रह्मयाग क्या है? तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती ने कहा-ब्रह्मयाग कहते हैं, ब्रह्म की महती का वर्णन करना, अथवा ब्रह्म का चिन्तन करना और ब्रह्म के चिन्तन करने का नाम ही ब्रह्मयाग है। ब्रह्म का अपने में समावेश करना, अपने में यह सिद्ध करना कि मैं ब्रह्म में हूँ और ब्रह्म मेरे में निहित रहता है। इसको एक सूत्र में लाने का नाम ही ब्रह्मयाग कहा जाता है। जहाँ प्रवृत्ति एकाग्र हो जाती हो।

तो ब्रह्मयाग के सम्बन्ध में ऋषि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा-ब्रह्मयाग उसे कहते हैं जहाँ इन्द्रियों का साकल्य एकत्रित हो करके और उनका साकल्य बना करके, हम हृदय रूपी यज्ञशाला में जब साधना के द्वारा अपना याग करते हैं तो उसे हम ब्रह्मयाग कहते हैं। तो ब्रह्मयाग उसे कहते हैं, जो अपनी इन्द्रियों के प्रत्येक विषयों का साकल्य बनाता है और साकल्य बना करके, ब्रह्म का दर्शन करता है। ब्रह्म की प्रतिभा में निहित हो जाता है, जैसे मानव अपने नेत्रों के ऊपर अन्वेषण करने लगता है और मानव अपने श्रोत्रों के ऊपर विचार-विनिमय करने लगता है,परन्तु विचारता-विचारता बहुत दूरी चला जाता है। जो एक सूत्र में ला करके उसे एक दूसरे में निहित करने वाला हो, उसी को हमारे यहाँ ब्रह्मयाग कहा जाता है। १२ ११ १९८३

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज एक समय ब्रह्म की पिपासा में भ्रमण करते हुए ब्रह्म को जानने के लिये तत्पर हुए। तो भ्रमण करते-करते महर्षि अटूटी मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे। महात्मा अटूटी मुनि महाराज ने कहा आओ, वशिष्ठ! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज विराजमान हो गये, दोनों ऋषियों का विचार-विनिमय हुआ। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा-भगवन्! मैं ब्रह्मयाग करना चाहता हूँ। ब्रह्मयाग को जानना चाहता हूँ ब्रह्मयाग क्या है?तो महर्षि अटूटी ने कहा कि ब्रह्मयाग को तुम नहीं जानते? ब्रह्म का साक्षात्् दर्शन करना, जैसे यज्ञशाला में

विद्यमान हो करके, जब यज्ञमान देवयाग करता है, तो याग करता हुआ, अग्नि को अपना साक्षी बना लेता है। अग्नि को साक्षी बना करके नाना प्रकार का जो भौतिक द्रव्य है, उसे वह अग्नि में अग्न्याधान करके, उसके साथ अपने को चित्रावलियों में रूपान्तरित करना चाहता है। इसी प्रकार प्रत्येक मानव ब्रह्मयागी बनना चाहता है। तुम ब्रह्मयाग में रहना चाहते हो, तो ब्रह्मयाग उसे कहते हैं जहाँ ब्रह्म का दर्शन हो जाये।

ऋषि ने यह प्रश्न किया कि ब्रह्म का दर्शन कैसे होगा? तो उन्होंने कहा जितना भी ब्रह्माण्ड है जितने भी ये लोक लोकान्तर हैं ये सब एक सूत्र में पिरोये हुए हैं। एक सूत्र में पिरोये हुए होने से ब्रह्म का उज्ज्वल दर्शन है, और भी सूक्ष्म धारा में गति करने लगोगे तो तरङ्गों का विकिरण करने वाला वह ब्रह्म माना गया है। वहाँ भी ब्रह्म का दर्शन होता है। अन्तिम में ब्रह्म को जानने वाला अपने को संसार में निष्क्रिय बना करके परमात्मा में रत्त हो जाता है, तो वास्तव में परमात्मा का विशेष दर्शन हो जाता है। जब ऋषि ने यह वाक् प्रगट कराया, तो वशिष्ठ बोले कि मेरे हृदय में यह विचार ऋषि की स्थलियों में प्राप्त हो गये। मैं उन विचारों को चिन्तन में लाता रहा, परन्तु वहाँ से भी महर्षि अटूटी के साथ हम पांचाल राष्ट्र में पहुँचे तो वहाँ एक गन्धर्व रहते थे। तो गन्धर्व के समीप जा करके दोनों ने कहा कि प्रभु! हम ब्रह्मयाग के सम्बन्ध में पिपासी बने हुए हैं कि ब्रह्मयाग क्या है? तो उस समय गन्धर्व ने कहा कि मैं भी ब्रह्मयाग में तत्पर होने के लिये जा रहा हूँ। परन्तु मेरा विचार यह है कि यहाँ से कुछ ही दूरी पर ऋषि वैशम्पायन रहते हैं, वैशम्पायन ऋषि महाराज ब्रह्म की पिपासा में लगे हुए हैं। उन्हें १२ वर्ष हो गये एक विचार, जिसके ऊपर अध्ययन करते-करते, वह ब्रह्मयागी बनना चाहते हैं। ऋषि वहाँ से भ्रमण करते हुए गन्धर्व भी उनके साथ में हैं। उनको ले करके वह ऋषि वैशम्पायन के द्वार पर पहुँचे। तो महर्षि वैशम्पायन मुनि महाराज ने उनका बड़ा सत्कार किया, उन्हें आसन दिया, आसनों पर जब वह विद्यमान हो गये, तो उन्होंने कहा-कहो भगवन्! यह मेरा कैसा अहोभाग्य है, कि ब्रह्मवेत्ता मेरे समीप विद्यमान हैं। उन्होंने कहा-प्रभु! हम तो ब्रह्म के पिपासी हैं, और ब्रह्मयाग में रत्त रहते हैं, परन्तु ब्रह्मयाग को हम जानना चाहते हैं कि यह ब्रह्मयाग क्या है?

तो जब ऋषि ने यह श्रवण कर लिया, तो वैशम्पायन बोले कि महाराज! मैं एक समय महाराजा अश्वपति के यहांँ वृष्टियाग के लिये पहुँचा। मैंने वहाँ एक वृष्टियाग कराया, जब वृष्टि हुई तो उसको कुछ ऋषियों ने ब्रह्मयाग का एक प्रभुत्व माना। उन्होंने माना कि यही तो ब्रह्मयाग है, जो वृष्टि, याग के द्वारा होती है तो वह ब्रह्मयाग हो रहा है। तो जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो महाराजा वशिष्ठ ने कहा-मेरे अन्तरात्मा को विश्वास नहीं हुआ। भगवन्! मैं इसको ब्रह्मयाग स्वीकार नहीं करता। यह शिक्षाप्रद एक उपदेश है, मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि ब्रह्म का विशेष दर्शन कैसे होता है? तो महर्षि वैशम्पायन बोले-कि आओ, विराजो।

तो वह सब एक पंक्ति में विद्यमान हो गये, एक पंक्ति में विद्यमान हो करके, महर्षि वैशम्पायन महाराज ने प्राण सूत्र की विवेचना की और प्राणसूत्र में उन्हें मौन करा दिया कि यह जो तुम्हारे प्राण में तथा अपान गति कर रहा है, इस गति को जानने के लिये तुम तत्पर हो जाओ। जो उन्होंने उच्चारण किया, उसी आभा में हम निहित हो गये और निहित हो करके प्राण को जानने के लिये तत्पर हो गये। कहीं प्राण को जानें तो उसका अपान में समावेश करें। तो उन्हें प्राण का दर्शन हो जायें। जहाँ प्राण की उड़ान में हम समावेश करें, तो उसी समय हमारे यहाँ एक रेचक वायु का दर्शन होने लगा। जब दर्शन होने लगा तो उस समय कहा कि प्रभु! यह प्राणों का एक दूसरा जो विभाजन हो गया, यह तो विभाजन की ऊर्ध्वा एक प्रतिक्रिया कहलाती है। परन्तु इसमें हमें आत्म विश्वास नहीं हुआ। तो उन्होंने कहा-कि प्राणसूत्र का विचार तुम्हें होना चाहिए। क्योंकि प्राणसूत्र में यह ब्रह्माण्ड सर्वत्र पिरोया हुआ है।

एक समय जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन कर रहा था, अध्ययन करते-करते प्राणसूत्र में

मैंने जब अपने को पिरोना प्रारम्भ किया, तो उसी प्राण सूत्र में सर्वत्र ब्रह्माण्ड मुझे पिरोया हुआ दृष्टिपात आने लगा। जब मैं अन्तरिक्ष में परमाणु विद्या के ऊपर अध्ययन करने लगा, समाधि में चला गया, तो नाना प्रकार के जो मण्डल हैं वह मुझे एक सूत्र में पिरोये हुए दृष्टिपात आने लगे। जब मैंने अपने में अध्ययन किया तो उसमें भी मुझे प्राण ही दृष्टिपात आने लगा। क्योंकि जो मन-प्राण की प्रतिक्रिया को जान करके अग्रणीय बनता रहता है, वही तो ब्रह्मसूत्र में पिरोया हुआ स्वीकार करता है और वही ब्रह्मयाग कहलाता है। ब्रह्मयाग कहते ही उसे हैं जब प्राण को अपान में और अपान को व्यान में, व्यान को उदान में और उदान को समान में पिरोया हुआ स्वीकार करके, हम अपने में अपने को पिरोया स्वीकार कर देते हैं, तो प्रायः हम रत्त हो जाते हैं। जैसे यज्ञमान, यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अग्नि में अपने को पिरो लेता है, अग्नि प्रकाश है, अग्नि जीवन है, यही अग्नि ब्रह्म की आभा में रत्त रहने वाली है। यही ब्रह्म बन करके, मानव के जीवन का एक सार्थक तत्व बन करके उसमें मानव अपने को रत्त कर लेता है, तो इसी प्रकार जब ऋषि ने यह वर्णन कराया, तो हमने वैशम्पायन ऋषि से कहा-कि महाराज! जब हम उस ब्रह्म सूत्र में अपने को पिरो लेते हैं तो उस काल में यह वाणी का विषय क्या बनता है? तो ऋषि ने कहा कि वाणी अपने में मौन हो जाती है, वाणी का अपना कोई विषय नहीं रहता है। उस समय तो केवल मानव अपने अन्तर्हृदय में, उस परमात्मा का दर्शन करता हुआ, अपने में रत्त रह करके, उस आभा में अपने को पिरो लेता है। इसमें रत्त हो गया। इसको हम ब्रह्मयाग कहते हैं।

शिकामकेतु ऋषि महाराज अपने में याग कर रहे थे, अपने में यागी बने हुए थे।

जब उनके समीप पहुँचे तो उन्होंने कहा-कि प्रभु! आप कौन-सा याग कर रहे हैं? उन्होंने कहा हम परोक्ष याग कर रहे हैं। परोक्ष याग उसे कहते हैं जो वाणी का स्वरूप हमारा अन्तरिक्ष में रत्त हो गया है उस वाणी के स्वरूप को हम इस याग के द्वारा शोधन करना चाहते हैं। जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान के लिये कहा गया है हे होताजनो! तुम यज्ञमान की वाणी को पवित्र बना दो। यज्ञमान वाणी से पवित्र बन करके द्यौ-लोक में चला जाएं। तो इसलिए वाणी पवित्र होती है। वाणी जितनी पवित्र होती है, उतना ही मानव का द्यौ-लोक पवित्र बन जाता है। मानव के जितने चक्षु दिव्य दृष्टि वाले होते हैं उतना वह गन्धर्व लोकों में रमण करने वाला हो करके गन्धर्वों से अपनी वार्त्ता प्रगट करता है। जितने श्रोत्र पवित्र बन जाते हैं। शुद्ध वाणी से, शुद्ध ध्वनि से उतना ही शब्द विज्ञान ऊँचा बन करके, मानव अपने श्रोत्रों को ऊँचा बना करके देवताओं के समीप जाने के लिये तत्पर हो जाता है। जितना हमारी त्वचा पवित्र हो जाती है। उतना ही हम प्रभु को प्राप्त हो जाते हैं। हमारे यहाँ प्रत्येक आभा में, प्रत्येक मानव, प्रत्येक इन्द्रियों का अपने में अनुष्ठान करता रहे, अपने में विचार-विनिमय करता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाय।

ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारियो! आज जो यह याग होने जा रहा है, इस याग को हमारे यहाँ मानशुचि याग कहा जाता है। मन को एकाग्र और मन का शोधन करने के लिये, हम यह याग कर रहे हैं तो इसको मानशुचि याग कहते हैं। तो हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें ब्रह्मचरिष्यामि बनकर के, ब्रह्म का दिग्दर्शन करना है। ब्रह्म का दर्शन कौन करता है? एक मानव ब्रह्मचरिष्यामि बनकर के ब्रह्मचर्य के व्रतों का पालन करता हुआ प्रवृत्तियों को अपने में समेटता हुआ, वह रत्त होकर के, ब्रह्म का दर्शन करता है और चरी का दर्शन करता है। चरी नाम प्रकृति का है। जितना भी दृष्टिपात आने वाला यह जगत है। इस सर्वत्र जगत में यह चरी के रूप में परिणत रहता है। जितने भी लोक-लोकान्तर हैं, अथवा ब्रह्माण्ड हैं नाना प्रकार की आकाशगंगाएँ हैं, नाना निहारिकाएँ हैं और उन निहारिकाओं से नाना प्रकार की तरङ्गों का प्रादुर्भाव होता रहता है। उन तरङ्गों को जो अपने में समेटने वाला है, अपने में धारण करने वाला है, उन पर अपना विश्लेषण करता है। ब्रह्मचारियों में परिणत होने वाला ब्रह्मयाग कहलाता है।

माता अरुन्धती यह उच्चारण करने लगी, कि जब मैं अपनी माता की लोरियों का पान करती, माता के चरणों में विद्यमान होती तो माता मुझे यह कहा करती थी, कि हे बालिके! तुम्हें ब्रह्मज्ञान के समीप जाना है, अरुन्धती मण्डल के द्वार पर जाना है और अरुन्धती मण्डल से जो ऊर्ध्वा में गति करने वाला अन्तरिक्ष है, उसमें भी तुझे रत्त रहना है। माता से जब मैं यह कहा करती कि हे माता! तू इस प्रकार का जो मुझे उपदेश दे रही है, मैं ऐसा कैसे कर सकती हूँ? उन्होंने कहा प्रवृत्तियों के द्वारा, जब हम ब्रह्मयाग की उड़ान उड़ने लगेंगे तो यह तेरे लिये सम्भव हो जायेगा।

तो माता का यह उपदेश मेरे अन्तःकरण में अंकित होता रहा। तो जब मैं बाल्यकाल में आचार्यों के समीप जा करके मैंने अध्ययन करना प्रारम्भ किया, तो एक-एक वेद के मन्त्र को ऋषिवर मुझे स्मरण कराते रहते थे। तो मेरे विचारों का उत्थान होने लगा। जब विचारों का उत्थान होने लगा, अध्ययन की प्रतिक्रियाओं में, मैं समाधि में भी प्रवेश होती रही, तो पूज्यपाद गुरुदेव सत्वेतत्त्व ऋषि महाराज मुझे समाधि में ले जाते। मैं लघु मस्तिष्क, रेणु मस्तिष्क और गन्धर्व लोकों का भ्रमण करती रहती। जब इन प्रवृत्तियों में मैं भ्रमण कराती रहती तो लोक-लोकान्तरों तरङ्गें मेरे मस्तिष्क में आने लगीं। मैं लघु मस्तिष्क में आकाशगंगा का दर्शन करने लगी। कहीं ब्रह्माण्ड की प्रतिभा का दर्शन करती हुई अपने में रत्त हो गयी।

तो माता अरून्धती ने कहा-कि मैं अनुसधान करते-करते ब्रह्मवेत्ता बनने के लिये तत्पर होने लगी। ब्रह्मवेत्ता क्या है? प्रभु की यह जो सृष्टि है, इसी के चिन्तन में लगे रहना और यह ब्रह्म कैसे इसमें पिरोया हुआ है? यह ब्रह्म में कैसे पिरोयी हुई है, इस चिन्तन में लगे रहने का नाम ब्रह्मयाग कहा जाता है।

जब हम अपने में, एक दूसरे में पिरोया हुआ स्वीकार करते रहते हैं, तो यही तो ब्रह्म का प्रायः दर्शन कहा जाता है।

राजा जनक के यहाँ नित्य ही ब्रह्मयाग होता रहता था। देवपूजा भी होती रहती थी। ०७१०१९८१

राजा अश्वपति के यहाँ प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन होता था और वह चिन्तन का विषय कितना महान और गम्भीर हैं जहाँ मैं दृष्टिपात करता हूँ, वहाँ तुम्हारी प्रतिभा मुझे दृष्टिपात आ रही है। मैं तेरे में रत्त होना चाहता हूँ। हे भगवन्! मेरा अन्तरात्मा पिपासी बना हुआ है। तेरे से किसी काल में विच्छेद हो गया था माता का पुत्र माता की लोरियों का पान करता है परन्तु ज्यों-ज्यों संसार का वातावरण उस में वास करता है तो वह माता से विच्छेद हो जाता है। कोई समय वह आता है जब माता और पुत्र दोनों दूरी-दूरी हो जाते हैं। क्योंकि संसार की प्रतिभा संसार के वातावरण की आभा में, इसी प्रकार है। हे प्रभु! इसी प्रकार यह जो प्रकृतिवाद है मैं इसके बंधन में इतना रत्त हो गया हूँ कि आपको अपने से दूरी कर देता हूँ।

तो महाराजा अश्वपति के यहाँ इस प्रकार की उपासना होती रहती।

६ प्रातः जागरण के मन्त्र

ओ३म् प्रातरग्निम्प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगम्पूषणं ब्रह्मणस्पतिम्प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम।। यजुर्वेद ३४.३४

भाषार्थ- हे मनुष्यों! जैसे हम लोग प्रभात काल में अग्नि को प्रभात समय में विद्युत वा सूर्य को प्रातः समय प्राण और उदान को और प्रभात समय अध्यापक तथा उपदेशक को ग्रहण करें वा बुलावें प्रातः समय सेवन करने योग्य भाग पुष्टिकारक भोग धन को वा वेद के रक्षक को प्रभात समय सोमादि ओषधिगण और जीव को ग्रहण वा स्वीकृत करें, वैसे तुम लोग भी आचरण करो।

ओ३म् प्रातर्जितम्भगमुग्रं हुवेम वयम्पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद्यम्मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यम्भगम्भक्षीत्याह।। यजुर्वेद ३४.३५

भाषार्थ- हे मनुष्यों! जैसे हम लोग प्रभात समय जो विविध पदार्थों को धारण करनेहारा न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र भी जिस ऐश्वर्य को विशेष कर जानता हुआ शीघ्रकारी भी शोभायुक्त राजा है जिस ऐश्वर्य को भी तू सेवन कर, इस प्रकार उपदेश करता है, उस अविनाशी कारण के समान माता के पुत्र रक्षक अपने पुरुषार्थ से प्राप्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य को ग्रहण करें, वैसे तुम लोग स्वीकार करो।

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमान्धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।।यजुर्वेद ३४.३६

भाषार्थ- हे ऐश्वर्ययुक्त! पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर वा हे ऐश्वर्य के दाता! विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनोंवाले सेवने योग्य विद्वान आप हमारी इस वर्तमान बुद्धि को देते हुए उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये। हे विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान! आप गौ आदि पशुओं घोड़े आदि सवारियों और नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ हमको प्रकट कीजिये। हे सेवा करते हुए विद्वन! जिससे हम लोग प्रशस्त मनुष्योंवाले अच्छे प्रकार हों, वैसे कीजिये।

ओ३म् उतेदानीम्भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्येऽअह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयन्देवानां सुमतौ स्याम।। यजुर्वेद ३४.३७

भाषार्थ- हे उत्तम धनयुक्त ईश्वर वा विद्वन! हम लोग वर्त्तमान समय में और पदार्थों की प्राप्ति में और भविष्यकाल में और दिनों में बीच समस्त ऐश्वर्य से युक्त हों। और सूर्य के उदय समय तथा विद्वानों की उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्ययुक्त हों।

ओ३म् भगऽएव भगवाँऽअस्तु देवास्तेन वयम्भगवन्तः स्याम । तन्त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह।। यजुर्वेद ३४.३८

भाषार्थ- हे विद्वान लोगों! जे सेवनीय ही प्रशस्त ऐश्वर्ययुक्त होवे उस ऐश्वर्ययुक्त ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ हम लोग समग्र शोभायुक्त होवें। हे सम्पूर्ण शोभायुक्त ईश्वर! उस आपको समस्त ही जन शीघ्र पुकारता है। हे सकल ऐश्वर्य के दाता! सो आप इस जगत में हमारे अग्रगामी होईये।

७ ब्रह्मयाग

आचमन

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः।।यजु.३६।१२

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः। ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठ। ओ३म् शिरः। ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्। ओ३म् करतलकरपृष्ठे।

मार्जन मन्त्र

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि। ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे। ओ३म् मह पुनातु हृदये। ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओ३म् तपः पुनातु पादयोः। ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओ३म् खम्ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

प्राणायाम मन्त्र

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्।।तैत्तिरीयारण्यकम् १०।२७

अघमर्षण मन्त्र

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् पसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततो समुद्रो अर्णवो।।ऋ.१०.१९०.१

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत् । अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्य मिषतो वषी।।ऋ.१०.१९०.२

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः।।ऋ.१०.१९०.३

पुनः आचमन

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः।।यजु.३६।१२

मनसा परिक्रमा

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिता दित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।अथर्व.३।२७।१

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।अथर्व.३।२७।२

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।अथर्व.३।२७।३

ओ३म् उदीची दिक सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।अथर्व.३।२७।४

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।अथर्व.३।२७।५

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।अथर्व.३।२७।६

उपस्थान मन्त्रः

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम्। देवन्देवत्रा सूर्य मगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।यजु.३५।१४

ओ३म् उदुत्यञ्जातवेदसन्देवँ वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।।यजु.३३।३१

ओ३म् चित्रन्देवा नामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षं सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।।यजु.७।४२

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।यजु.३६।२४

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भू भुर्वः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।ऋ.३.६२.१०

समर्पणम मन्त्र

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।।

नमस्कार मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्‌्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।य.शु.१६।४१

इति ब्रह्म यज्ञः